जीवन-रेवा

राजेश्वर गुरु

राजेश्वर गुरु की अन्य कृतियाँ

प्रेमचन्द : एक अध्ययन	**आलोचना**
भोर से पहले	**एकांकी-संग्रह**
पाँच एकांकी	**एकांकी-संग्रह**
वर्मा जी की 'झाँसी की रानी'	**आलोचना**
झाँसी की रानी	**नाटक**
मिलन : [गुरुदेव की पुस्तक 'दि रैक' का अनुवाद]	
डाक्टर कोटनीस की अमर कहानी [अब्बास की पुस्तक का अनुवाद]	
दुर्गावती	**काव्यवृत्त**
शेफाली	**कविता-संग्रह**

जीवन-रेवा

[काव्य-संकलन]

काव्यकार

डा० राजेश्वर गुरु

प्रकाशक

बंसल एण्ड कम्पनी

नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२.

प्रकाशक
रघुवीरशरण बंसल
संचालक
बंसल एण्ड कम्पनी, दिल्ली-३२.

प्रथम संस्करण
अगस्त, १९६६

मूल्य : पाँच रुपये

मुद्रक
रामाकृष्णा प्रिंटिंग प्रेस,
कटरा नील, दिल्ली-६,

बेटी कुमुद को ;
जो अब नहीं है।

बेटी कुमुद !
तुम्हारे जाने के पूर्व यह
पुस्तक तुम्हारे हाथों
में न धर सका।
अब तुम्हारी गीली स्मृति
के हाथों में सौंपता हूं

राजेश्वर गुरु

स्पष्टीकरण

'जीवन रेवा' मे सन् १६४० से लेकर अब तक लिखी गई कविताओ में से कुछ का संग्रह है। इस बीच मैने अनेक लम्बी कविताएँ लिखी है। इनमें से कुछ ही इस संग्रह मे आई हैं, शेष अलग संग्रह के रूप में प्रकाशित होंगी।

'जीवन रेवा' की कविताओं में विषय की विविधता है, फिर भी अन्तर्निहित एक स्वर इनमें विद्यमान है। इसीलिए इन्हें एक सूत्र में ही बाँध दिया गया है।

मेरे काव्य जीवन में रुचि लेने वालो ने समय-समय पर मेरे प्रति सराहना के शब्द व्यक्त किये हैं। मैं उनका कृतज्ञ हूँ। यह संग्रह उन्हें रुचेगा, ऐसी आशा है। बन्धुवर श्री रघुवीर शरण बंसल की प्रेरणावशात् यह संग्रह इस रूप-सज्जा में निकला है। मैं उनका आभारी हूँ।

२३ जुलाई १६६६.
सिहोर, (मध्यप्रदेश)

—राजेश्वर गुरु

मेड़ाघाट की रेवा—प्रवेश

स्मित प्रशस्त, आनन्द व्यस्त सी वरद-हस्त-सी मंगल रात,
स्नेह मुग्ध धरती विलुब्ध-सी स्निग्ध शरद ज्योत्स्ना में स्नात।
हंस पंक्ति वर्षान्त गगन में ज्यों तिर चले सहज निःशंक,
मदिर मन्द गति सरक रही रेवा फैला पारद के पंख॥

पुण्यशील आत्मा-सा उज्ज्वल पंकहीन युग तट का गात,
जिसका कन कन बूँद बूँद में बूंद बूँद ज्योत्स्ना में स्नात।
लहर लहर पर पूनों के अकलंक चन्द्र का रजत विलास,
बूंदों की अवर्ण तरलाई में सुरधनु का रंजित हास॥

मुक्ता के कन कन किरनों में बनते हीरक और प्रवाल,
या जल में धुलकर किरनें ही अमल धवल वर्णों का जाल।
वह घन तरु विस्तार क्षितिज को बाँधे हुए तमिस्राकार,
खोल रही यह तरल आरसी नभ के चिर रहस्य का द्वार॥

एक मृत्यु सा भव्य मौन गम्भीर और निर्मम्य प्रशान्त,
और दूसरी मृत्यु क्रीड़ में जीवन सी तरलाभा कान्त।
या कि श्याम ही चकित थकित अनिमेष नयन से रहे निहार,
नीचे लहरें चंचल व्रजबालाओं सी कर रहीं विहार॥

ऊपर पवन लहरते पातों में लिपटी घन अँधियारी,
जैसे हो वन पथ तट पर लट छिटकाये निशि सुकुमारी।
नीचे छलक लहरियाँ जैसे चिन्ताहीन किशोरी-सी,
छूतीं पवन उछलती चलती नवल लता झकझोरी-सी ॥

कलहंसिन-सी चचल गति मे वन पंछी-सी स्वर मे भूल,
सुधि-सी प्राण समेट सजाये ले उर की करुणा के फूल।
यौवन घट धारे पनिहारिन-सी पग पग छलकाती प्रीत,
अभिमारिन सी मुग्ध गा रही है अपने प्रिय के गीत ॥

पूर्ण चन्द्र ज्योत्स्ना मे भीगा मुक्त गीत-सा कलकल राग,
बिखर गया हो विजन विपिन मे जैसे जीवन का अनुराग।
छन्द छन्द में प्रियतम की सुधि स्वर स्वर मे प्रिय पथ का शोध,
लहर लहर मे मिलन आस की सुख उमंग निर्बाध अबोध ॥

गति अरोक उद्दाम नये यौवन की चिर - नव रति - सी ले,
त्वरित किरन मे चकाचौंध चपला की चमक अगति सी ले।
यह अनिद्य अभिसार सजे सी आत्म - मग्न करुणा राधा,
प्रिय के देश बढ़ी जाती है क्या अवरोध कौन बाधा ॥

एक साध सागर सम्मेलन एक साधना अमर प्रवाह,
जीवन विमल मधुर कविता-सा एक राह प्रिय सुधि की राह।
आता है अज्ञात देश से झूम झूम प्रिय का सन्देश,
स्वर मे मग्न बढ़ी जाती है प्रतिध्वनि सी प्रियतम के देश ॥

गति जीवन है, एक घड़ी की गति रुककर जीवन निस्पन्द,
क्या अस्तित्व सुरभि का है यदि हुई सुरभि सीमा में बन्द।
राह [illegible] स्वीकार न रोके, रोके तो हो जर्जर चूर,
हठ[illegible]बाधा पर रुक जाये, समय कहाँ जाता है दूर ॥

यह फैली शैलों की माला यह ऊँची ऊँची चट्टान,
अटल प्रलय के अन्तिम क्षण सी अचल ध्यानरत यती समान।
रोके रोक सकें यदि युग युग सजा सजा पत्थर के पाश,
मुक्त प्राण धारा को बन्दी करने का उपहास्य प्रयास ॥

रोक सका है कौन यहाँ पर जीवन का दुर्दाम प्रवाह,
भूल सका बाधाओं में भी कौन यहाँ प्रियतम की राह।
रस पथ के अवरोध बने हैं कब कब घाटी और पहाड़,
कब न प्रान का गीत हुआ गुंजित धरती की छाती फाड़ ॥

पी का पंथ खड्ग की धारा पग पग पर आघात विघात,
सित शैलों की भग्न क्रीड़ में आत्म-समर्पण सा जलपात।
यत्न और चीत्कार किन्तु कब यत्न भग्न विस्मृति के कूल,
भूले हार मुक्त प्रणों मे नई शक्ति फेनों के फूल ॥

यह रेवा मेरे जीवन सी सिद्धि ज्ञान हत अविरत साध,
आत्म-समर्पण-सी सब देकर प्रिय आराधन बनी अगाध।

१

भोर की किरन सुबरन गगन से झरी,
तरुण अधर से जैसे स्मित हो बिखरी।

ज्योति के तरल अनंग रंग घुल गये,
अलस रूप के अरूप बंध खुल गये।
पवन-दोल पर तरंग झूलने लगी,
सरस कली की उमंग फूलने लगी।
रूपसी थिरक चली प्रकाश की परी,
भोर की किरन.........

अनजाने नीड़ के विहंग उड़ चले,
नभ पथ पर मिले संग-संग जुड़ चले।
जीवन की चाह चपल चहक बन गयी,
स्वर नवीन ताल नयी लय नयी नयी।
धरा की प्रसन्न गोद मोद से भरी,
भोर की किरन.......

सपन घुले नये सत्य के विहान मे,
कर सचित किरन परस हरस प्रान मे।
अन्तर का रिक्त कोष भरे प्यार से,
आतुर हो पार की रहस पुकार से।
माझी ने खोली इस तीर से तरी,
भोर की किरन सुबरन गगन से झरी।

२

भोर साँझ हो दिन दुर्दिन हो,
ज्योत्स्ना हो या अमा निशा।
जीवन एक अनवरत चलना,
कौन राग रति कौन दिशा।

× × ×

नई शोध को अपना दुर्दम साहस दे चल माझी,
संग संग चल तू मेरे मैं तेरे खे चल माझी।
सब कुछ दाँव लगे लग जाये मैं तू अपनी तरखी,
जिस तट कोई जा न सका हो उस तट ले चल माझी।

× × ×

ज़र्द न हो सपनों की सुर्खी सर्द न हो प्रानों का सोज़,
जीवन की यात्रा पर तय हो एक नई मंजिल हर रोज़।
जो अनगाया गीत वही है जो अनपाया इष्ट वही,
भर चल अनगाया स्वर राही कर चल अनपाये की खोज।

× × ×

काल छिद्रमय साँसों का घट बूंद बूंद रिसता है,
बूंदें बनकर छलक लहरियाँ मिलती हैं मंज़िल से।
जीवन एक नाव है जिसका लहरों से रिश्ता है,
जिसने अपनी मुक्ति कामना की न कभी साहिल से।

× × ×

बीजांकुर विकास के क्रम में रूप रंग रस लय है,
जिसका रूप अरूप सजाता भव की विभव कहानी।
जीवन एक फूल है जिसकी सुरभि विशाल हृदय है,
फैल पवन के संग बन गई जो संसृति की वाणी।

× × ×

मेरे पैर तले धरती है सिर ऊपर आकाश रहे,
जीवन पल्लव पोषी मेरी मलयज भीनी साँस रहे।
जीवन एक अदम्य प्यास है जिसका कोई अन्त नहीं,
जितनी धरती प्यास बुझाए उतनी बढ़ती प्यास रहे।

× × ×

आज क्या तूफ़ान ही तूफ़ान है, माझी कहो तो।

आज लहरों ने कहाँ का जोर यह साधा कहो तो,
किस प्रलय ने नये फणिधर सा जलधि बांधा कहो तो।
किन्तु फिर भी कौन भय है कौन सी बाधा कहो तो,
आज जो तूफ़ान ही तूफ़ान है, माझी कहो तो।
आज क्या तूफ़ान ही.........

शत प्रभंजन चलें, चलकर आज मनमानी करे तो,
आज नभ के मेघ उमड़ें धरा को पानी करें तो।
और सागर पूर होकर प्रलय अगवानी करे तो,
तुम्हारा मन किन्तु क्यों हैरान है माझी कहो तो।
आज क्या तूफान ही.........

आज के पहले अनेकों बार तरनी खे चुके हो,
होड़ मौजों के चढ़े अम्बार से तुम ले चुके हो।
मौत को सौ बार जीवन की चुनौती दे चुके हो,
फिर भला क्यों आज शंकित प्रान हैं माझी कहो तो।
आज क्या तूफ़ान ही.........

आज निश्चय ही तेरी रुकने न दूँगा मैं किनारे,
सब अगर प्रतिकूल तो ले चलो साहस के सहारे।
पीर मैं अपनी सँभालूं ले चलो तुम धीर धारे,
आज मेरी विकलता का क्या तुम्हें अनुमान है
माझी कहो तो।
आज क्या तूफ़ान हो·········

आज मेरे प्रान में यह आग सी कैसी लगी है,
आज दावा में झुलस यह कामना कैसी जगी है।
आज मेरी भावना किस पूर के रस मे पगी है,
आज क्या उस पार कोई गान है माझी कहो तो।
आज क्या तूफान हो·········

आज मन रुकना न चाहे आज वह बधन न माने,
विसुधि तन्मयता जगी है वह मरन जीवन न जाने।
श्वास तरनी खे रहा कोई स्वरों के पाल ताने,
आज क्या सब कुछ नहीं आसान है माझी कहो तो।
आज क्या तूफ़ान ही तूफान है, माझी कहो तो ॥

४

जन्म-दिन है आज, झर-झर झर रहे हैं मेह, मैं मल्हार गाऊँगा।

आज धरती का तरल सपना गगन में छा गया है,
साँवरे घनश्याम का संकेत-घन मुसका गया है,
गा गया है, चाह के स्वर मन-नयन में गा गया है,
लालसा झुक भींजती हैं, सदय रस बरसा गया है,
बूड़ने दो, आज उमड़ा है प्रबल नद-नेह, मैं अभिसार गाऊँगा।
जन्म-दिन है आज,.........

आज के पहले अनेकों बार मन चंचल हुआ है,
मेघ ने मुझको पुकारा, पवन ने मुझको छुआ है,
प्रेरणा दी नदी की गति ने, नियति ने चाहना दी,
लताओं ने प्राण के नन्हें उटज पर शान्ति छा दी,
गुन न पाया किन्तु मैं संकेत इनके, भाव इनके,
मुझे बांधे रहे तट के क्षुद्र बन्धन चार दिन के।
आज जैसे युगों के भटके पथिक ने मीत पाया,
आज जैसे नीड़ के नन्हें विहग ने गीत पाया,

आज पावस के पवन में पाल बरबस खुल गये हैं,
आज लहरों पर नदी के मुग्ध सपने झुल गये है,
आज अन्तर में मचलते चाह के तूफ़ान में
स्वर साध कर मैं प्यार गाऊँगा।
जन्म-दिन है आज,.........

भूल जाने दो मुझे पल-छिनों के दुख दर्द सारे,
प्रलय-पथ पर बढ़ चलूं रस की तरंगों के सहारे,
खुल चली पालें, चलू मैं, दूर हों मुझसे किनारे,
पंथ हो मँझधार, हो पाथेय पी के चुप इशारे,
आज मैं रस-विवश इतना हू कि तज कर
लोक-लज्जा-गेह, सागर पार जाऊँगा।
जन्म-दिन है आज,.........

आज मत रोकें मुझे पथ के लुभावन तिरन-तिनके,
टूट जाएँ आज तट के क्षुद्र बंधन चार दिन के,
मैं चला हूँ आज क्षण में समय को बन्दी बनाने,
साँस का सूना निलय विश्वास के घन से सजाने,
मैं विहग-सा तोड़ बंधन क्षीण पिंजर-देह
नभ में मुक्त छाऊँगा।
जन्म-दिन है आज,.........

तिमिर का अंजन चतुर्दिक घिरा है क्या रुक रहूँ मैं ?
प्राण में उमड़े हुए तूफ़ान को किससे कहूँ मैं ?
कालिमा ओढ़े हुए यह जिंदगी सोयी बहुत है,
किस अमूरत स्वप्न की अभिलाप में रोयी बहुत है;
आँख ने तम ही निहारा प्यास ने आँसू पिये हैं,
साँस के क्षण मृगतृषा की गोद मे पलकर जिये हैं।

नियति ने मेरे क्षितिज पर तिमिर ही आँका, पिपासा ही लिखी है,
आस के बेसब्र खग ने जब हृदय के नीड़ से झाँका, निराशा ही दिखी है,
किन्तु ऐसे हारकर सौ बार, जीवन से न फिर भी हार पाऊँगा।
जन्म-दिन है आज,·········

भव जलधि के बीच जीवन तरी मैंने छोड़ दी है,
प्यार की सामर्थ्य ले तूफान से भी होड़ ली है,
क्षुद्र मैं, पतवार मेरे हाथ में दे, मैं न जानूँ कौन माझी खे रहा है,
किन्तु गौरव है कि अपनी किसी इच्छा को, मुझी में रूप रचना दे रहा है,
मुग्ध मैं, अपने सदय की कृपा करुणा कोर पर बलिहार जाऊँगा।
जन्म-दिन है आज, झर झर झर रहे हैं मेह, मैं मल्हार गाऊँगा॥

५

आदि-हीन पथ अंतहीन पथ राही हूँ अभिमान रहे,
जब तक रहे साँस की तंत्री, तब तक गति का गान रहे ।

चलूँ निरंतर, फूल न खींचें, रोके मुझको शूल नहीं,
चलूँ निरंतर उस तरनी-सा जिसने माँगा कूल नहीं ।
मन अनुकूल नहीं कि मौज की बंसी तट पर बैठ सुनूँ,
मेरे वे पग नहीं कि जिन पर पथ चलने की धूल नहीं ।
अगति न हो साँसों का जीवन गति मुझको वरदान रहे,
जब तक रहे............

दिवस चलूँ रवि-सा कन-कन को जीवन दिये—प्रकाश दिये,
विधु-सा निशिभर चलूँ श्रमित पलकों को स्वप्निल हास दिये ।
चलूँ लहर-सा उमग तोड़ता तीरों की ज़ंजीरों को,
चलूँ पवन-सा लिये सुरभि की साँस सुरभि को पाश दिए ।
इतना मुग्ध चलूँ कि चल रहा हूँ न मुझे यह ध्यान रहे,
जब तक रहे...........

पथ के तट पर बैठ रहूँ मैं किन बाधा-व्याघातों से,
गति का दावा क्यों न उगाहूँ जीवन के दिन-रातों से ।

क्यों चाहूँ तरनी की रक्षा दुर्दिन के संघातों से,
सिमिट रहे क्या तरी तीर के पवन-तरंगाघातों से।
मैं चाहूँ कि खेलता मेरी तरनी से तूफ़ान रहे,
जब तक रहे............

पथ अनन्त है पर गतिशीला साँसों का भी अन्त नहीं,
जिसे न चरण दलित कर पायें ऐसा कहीं दिगंत नहीं।
मैं जानूँ कि शरद की शोभा शिशिराहत पतझार बने,
पर पतझर-घिर गये चमन से ज्यादा दूर वसंत नहीं।
श्लथ-पद मेरी अलस निशा के आगे सरस विहान रहे,
जब तक रहे............

राही हूँ मैं, पैर तले पथ, सिर पर है अनन्त मन्जिल,
अंतहीन चलने वाले को रुक जाने से क्या हासिल।
कहाँ रुकी है दुर्दम सरिता कूलों के आमंत्रण पर,
सागर मिलनातुर प्रानों को रोक सका है क्या साहिल।
प्रान बिन्दु में सागर भरने का मेरा अभियान रहे,
जब तक रहे साँस की तंत्री, तब तक गति का गान रहे।

६

कहाँ कहाँ से आन मिले हैं पंछी किस किस डाल के,
पौ फटते ही सब चल देंगे अपना बोझ सँभाल के।

सब का अपना सफ़र अलग है सब का अपना बोझ है,
हैं दुख-दर्द सभी के अपने अलग सभी की सोच है।
सबकी अपनी प्राप्ति अलग है सब की अपनी खोज है,
लेकिन यह सम सत्य सभी का है कि सफ़र हर रोज़ है।
सबको चलना है अपनी डफली पर अपनी ताल दे,
सब को चलना है अपनी नैया पर अपने पाल दे।
कहाँ कहाँ से… ……

दो क्षण सफ़र किसी के संग है दो क्षण संग विराम है,
दो क्षण बाद याद के पट पर अंकित धुँधला नाम है।
चलने वाले बंजारे का स्थायी कहाँ मुकाम है,
टांडा लाद सुबह चल देगा अगर रुका इस शाम है।
हम सब ही दयनीय लक्ष्य हैं बघहेला के जाल के,
सबके संग अलक्ष लगे हैं लाख इशारे काल के।
कहाँ कहाँ से… ……..

यह अनन्त माहौल सफ़र का गगन बँधा है शोर से,
सबके चरण बढ़ रहे आगे बंध अदृष्ट की डोर से।

एक एक आँसू स्मित लेदे नयन अधर की कोर से,
सब के संग सभी मिलते हैं जैसे पंछी भोर से।
जैसे मिलकर लहर बिछड़ती है तट के शैवाल से,
आहों के प्याले में अन्तर रस शीराज़ी ढाल के।
कहाँ कहाँ से...........

चला बिसाती घटता बढ़ता बोझा लिए बिसात का,
लेखा-जोखा करता जाए पाई खोई बात का।
होठों की चाँदनी रात का आँखों की बरसात का,
मिलन नई कोंपल का बिछड़न पतझर पियरे पात का।
सही भाव यदि लगते जाएँ दिल के सच्चे माल के,
तो क्यों कसकेंगे फिर पल छिन मीठे कड़वे हाल के।
कहाँ कहाँ से... .. ..

अपनी और परायी किसने कही सुनी दिल खोलकर,
किसने दर्द किसी का बूझा चढ़ सुख के हिंदोल पर।
हम सब लेन देन के आदी लेते देते तौलकर,
लेकिन लम्बा पथ कटना है चार घड़ी हँस बोलकर।
जो हर दिल को रोशन कर दे सदके ऐसी चाल के,
लगे कि ज्यों धर दिया किसी ने घी का दियरा बाल के।

कहाँ कहाँ से आन मिले है पंछी किस किस डाल के,
पौ फटते ही सब चल देंगे अपना बोझ संभाल के।

७

दीप दिया काया का सांसों की बाती,
गेह दिया तमका दी नेह भरी छाती।
जलन का विधान दिया ओ देने वाले,
जो कुछ है सब कुछ है तेरी ही थाती।

तेरो सब लीला है, मेरी क्या क्षमता,
ज्योत बनी जलती है, तेरी ही ममता।
गुंजित है स्वर निस्वर तेरी ही मुरली,
तिल तिल यह जलन जहाँ गुन गुन गुन गाती।

डगर गली अँधियारी, सूना घर कोना,
मेरी यह जलन किरण बन जाये सोना।
वर दे पथ चलते बस इतना कर पाऊँ,
तू ही मत बिछुड़े ओ राह के संगाती।

८

बहुत दिनों से नही लिखा है गीत नया,
जैसे सब रस सूख गया मन रीत गया।
जब पावस के स्निग्ध पयोधर घिरते थे,
वह भी युग था—आया, बरसा, बीत गया।

अमल शरद के अभ्रहीन आकाश तले,
अमृत किरन भर तरुण चाँद के हास तले।
धरती ने केशर कुंकुम से माँग भरी,
सपन बीज अँकुराये फूले और फले।

यह ढलती हेमन्ती दुपहरिया का पल,
जैसे अलसाई अँखियाँ हो बिन काजल।
पर गीतों की गगरी है अब भरी भरी,
बीत चुका है कब का व्यर्थ स्वरों का छल।

शिशिर साँझ घिर रही विहंग घर लौट रहे,
दिन भर के भटके साथी ज्यों बाँह गहे।
फिर वसन्त आयेगा जाने कब आये,
फिर जाने कब नये सृजन की पोर दहे।

९

जाने कब तक रात जलाए दुखिया जिया अधीर को,
जाने कब तक दीप जले यह इस अंधियारी रात में।

कब तक बाती जले और फिर कब तक संग सनेह दे,
कब तक अपनी ही सांसों को आश्रय अपना गेह दे।
कब तक इस अनियंत्रण का इंगितचारी हर पात रहे,
कब तक किसी अबूझ मंत्र में दग्ध मुग्ध चैतन्य बहे।
तूने दी पर कहाँ संभालूँ इस तम की जागीर को,
देनें वाले तू कह दे क्या सच है इस सौगात में।

सहा रूप का दम्भ बहुत भावुक मन के उच्छ्‌वास ने,
रंग दिखाए बदल-बदल कितने सच के आभास ने।
कितना कहा; किन्तु सब कहकर तृप्तिहीन अभिव्यंजन है,
जाने क्या है कहाँ अनिर्वच जिसके लिए विकल मन है।
अवगाही में ढूँढ़ रहा हूँ मँझधारा में तीर को,
ऐसा रतन मिले कि अर्थ जो भर दे छूँछी बात में।

कहीं नहीं कुछ बन्धन फिर भी बन्धन चारों ओर हैं,
और बन्धनों पार किसी की खातिर प्रान विभोर हैं।
रूप रंग रस गन्ध स्पर्श के इन सारे उपधानों में,
बैठी कौन अनोखी छवि है छिपकर लता वितानों में।
भंग करो इस जड़-चेतन की अवरोधी प्राचीर को,
मुझको भी शामिल होने दो इस रस की बरसात में।

जाने कब तक रात जलाए दुखिया जिया अधीर को,
जाने कब तक दीप जले यह इस अँधियारी रात में।

यह जग एक सुरम्य तमाशा,
मन के लिए खिलौना खासा।
लेकिन अपनी किसे सुनाऊँ,
मेहा भरे पपीहा प्यासा।

१०

जगमग हाट रूप की गुन-गुन भीड़ रसीले भृंगों की,
फ़िज़ा महकती हुई चहकती हुई नुमाइश रंगों की।
नज़र किसी की नज़रों में घुल तृष्णा से आतुर आकुल,
मनहर गीत ग़ज़ल सैलानी किश्ती पवन तरंगों की।
दुनिया जैसे महक भरे गुल मुग्धा के लहराते काकुल,
दिल के लिए बहुत है यह दुनिया सतरंगी स्वर संकुल।
लेकिन अलग सुकूने दिल है शादिए दिल से दूर कहीं,

खुशियों की मिज़राब बीन सोई है जाग नहीं पाती।
साँस हवा में तिरते गीतों में अनुराग नहीं पाती,
मन के भीतर गूँज नहीं बन पाती हैं ये छूम-छनन।
रूप शिखाएँ जला नहीं पाती हैं अन्तर की बाती,
महफ़िल है कैसी मनरंजन लेकिन बुझा बुझा सा है मन।
मेरी खातिर है दुनिया के ये स्वर संगम ये नर्तन,
पर सपनीले नयन लगे हैं इस महफ़िल से दूर कहीं।

अनजाना पथ अनगिनती पद चिह्न भ्रमित पंथी का मन,
राह रोक कर खड़े हुए हैं पथ के शत-शत आकर्षण।
मैं ऐसा राही हूँ जिससे दूर धरा है दूर गगन,
जिसका है पाथेय एक बस स्वप्नालोकित मुग्ध नयन।
आँखों में देकर स्वप्नांजन चला जा रहा हू मैं अनुक्षण,
पद चिह्नों का मेला—करता हूँ अपने पथ का अन्वेषण।
भटक गए हैं चरण यहाँ अपनी मंज़िल से दूर कहीं,

जिसने दी यह नाव उसी ने क्षितिज पार का ख़्वाब दिया।
मंझधारा के लिए तीर की तरनी को बेताब किया,
वृथा पवन से भीति डूबने का डर ख़ाम ख़याली है।
अपनी मंज़िल उसने पाई जिसका है मज़बूत हिया,
चिन्ता क्या कि रात काली है दूर कहीं हँसती लाली है,
तट से बंधी रहे तरनी यह तरनी की पामाली है।
अगर डूबना है तो डूबे पर साहिल से दूर नहीं।
दिल के लिए बहुत है दुनिया यह सतरंगी स्वर सँकुल,
लेकिन अलग अपने दिल में शादिए दिल से दूर कहीं।

वह क्या गा पायेगा, पाया आँधी से तूफ़ान से,
जिसके स्वर ने सोज़ नहीं, जिसकी साँसों में साज़ नहीं।
वह क्या झंकृत कर पायेगा युग को अपने गान से,
साँसों को अवरोध मौत को जिसने दी आवाज़ नहीं।

११

अरे ज़माने देखूँ कितने ज़ोर भरे बाज़ू तेरे,
ज़ोर लगा ले मैं न झुकूँगा टूट नहीं मैं जाऊंगा।

तूफ़ानों का मौसम जीवन की साधारण बात है,
सन्ध्या कभी उदास बहुत है कभी मलीन प्रभात है।
कभी घिरे दुर्दिन के नभ में सहमा हुआ विहंग है,
उर पर पीढ़ा कभी अमावस्या का शिथिल भुजिंग है।

अम्बर है बेचैन किसी दिन मौजों के अम्बार में,
हँस जाती है व्यंग किसी दिन मौत खड़ी मझधार में।
मेरी गाँठ रतन है मेरी मंज़िल है उस पार की,
आदि अन्त जीवन लम्बी तैयारी है अभिसार की।

अभिसारी कब पार लगा है चढ़ सुविधा की नाव पर,
उसने पी को पाया जिसने प्राण लगाये दांव पर।
सुविधा की किश्ती नाज़ुक है सह न सकेगी ज्वार को,
सुविधा की किश्ती में होगी ज़गह महज़ दो चार को।

अरे ज़माने तू न मुझे सुख सुविधाओं की सेज दे,
तूफ़ानों के हाथों मेरी किश्ती तनिक सहेज दे।
तू सुविधा में मत भरमा मेरे मन के संघर्ष को,
बाधाएँ दे चमक मिलेगी उनमें मेरे हर्ष को।

तू गढ़ता चल मैं तोड़ूँ तेरे जंजालों के घेरे,
भयवश मैं न रुकूँगा तट पर छूट नहीं मैं जाऊँगा।

दियरा माटी का साँसों की बाती अक्षय स्नेह है,
और स्नेह में जगमग-जगमग बाहर भीतर गेह है।
क्या भय यदि तम सिन्धु अगम है बूँद बराबर जोत है,
जो थामे विश्वासी मन को वही संतरण पोत है।

इस सुदीर्घ जीवन-यात्रा पर अपना ही अवलम्ब ले,
पार करूँगा खाई परबत शत विराग के दम्भ के।
होकर नत शिर दिया लिया है पर गर्वोन्नत माथ से,
कभी न जाने दिया विनय को और दर्प को हाथ से।

मुझे काल की गरमी सरदी सहज भाव स्वीकार है,
मरु पर्वत सम भाव प्रवाहित मेरी जीवन धार है।
चलने दे अज्ञात क्षितिज के तट तक तरल तरंगिनी,
अरे ज़माने तेरी हर बाधा है मेरी संगिनी।

तेरे लाख किये से होगी मेरी धड़कन बन्द नहीं,
स्नेह चुकेगा नहीं दीप की चमक पड़ेगी मन्द नहीं।
साँस न जब तक चुके न मेरा कोष चुकेगा स्नेह का,
अविचल सजग करूंगा पूरा दावा मन का देह का।

तू दे चल मैं व्यर्थ करूं तेरे अभिशापों के घेरे,
मैं न चूकूंगा इस जीवन से रूठ नहीं मैं जाऊँगा।
अरे ज़माने देखूँ कितने ज़ोर भरे बाज़ू तेरे,
जोर लगा ले मैं न झुकूंगा टूट नहीं मैं जाऊँगा।

१२

इस अनगढ़ पत्थर पर उसका जीवन-वृत्त लिखा है—
ऊँघ रही है जहाँ अलस–वदना पीपल की छाया,
वहीं जली थी किसी अधम की पंचभूत की काया।
"रख न सका जो पैर धरा पर जो न गगन छू पाया।

जो न नया पथ बना सका, जो चला न सका परिपाटी,
जिसने अपनी सकल जिन्दगी भटक-भटक कर काटी।
पाँच हाथ भी, रज में जिसका कहीं न लेखा-जोखा,
उसी अभागे का शव जलकर यहीं हुआ था माटी।

जो सदैव चुप रहा कि कहना महज़ प्रलाप कहाता,
जिसके स्वर को सुनकर जग हँस देता, वह क्या गाता।
अपने से बाहर कह पाया जो न किसी से अपनी,
अपने से बाहर न किसी से जोड़ सका जो नाता।

ढाल न पाया जो दुनिया के स्वर में अपने स्वर को,
लाख चाह कर कह न सका जो अपना अपने घर को।
रँग न सका जो अपने मन को दुनिया के रंगों में,
गढ़ न सका जो इस धरती के ढाँचे में अम्बर को।

जो ऐसा था अपना सब कुछ खोकर भी क्या पाये,
हर पाने से संकुचे—सिमटे हर खोने पर गाये।
अपने घर में आग लगाकर कर में लिए लुकाठी,
जो कबीर सा खड़ा हाट में सबकी खैर मनाये।

दहन पर्व में सूखा जिसके जीवन रस का सोता,
जान बूझकर असफलताओं को जिसने घर न्योता।
जो अलभ्य के पीछे भटका किन्तु न सीखा जिसने—
फूल चमन में न हों इसलिए काँटों से समझौता।

आँधी खुश है इसके सिर के फूल धूल में बिखरे,
किन्तु गर्व का फूल अमन्द रहा जिसके प्रानों में।
सिर पर कफ़न लिए प्रानों में अरमानों की झोली,
दुर्भाग्यों की अगिन भीड़ को संग किए हमजोली।

जिसकी बान रही अभिमानी उस चरणाहत रज सी,
जिसने पैरों दला उसी के सिर पर चढ़कर बोली।
अपने भीतर लगा निरंतर मन मौजों का मेला,
संकुल पथ से अलग चला जो मस्ती मे अलबेला।

जग के लेखे व्यर्थ विरस अपने जीवन को जिसने,
गीत बनाकर गाया जिसने खेल समझकर खेला।
क्या समझेगी दुनिया ऐसे अनहोने होने को,
क्या समझेगी दुनिया उसके हँसी खुशी रोने को।

लहर उठे विधु छूने गिरकर बिखर-बिखर रह जाए,
सदा हसी है देख-देख दुनिया ऐसे बौने को।
जिसने अपने बौने उर में विधु का रूप समेटा,
प्राणों में समुद्र लहरों का हाहाकार लपेटा।

नई दिशाएँ पाने जिसने तट के बन्धन तोड़े,
दिग्पट पहन मृत्तिका ओढ़े यहीं पड़ा है लेटा।
जाने वाले पथिक बिलमकर पढ़ लेजा यह लेखा,
यही कथा है उसकी जो था अनहोना अनदेखा।

१३

साँझ की वेला, क्षितिज में डूबता सूरज,
धरा पर है बिखेरे स्नेह का आरक्त अंचल।
घन सुनहले, चल समीरन पात चंचल,
प्रिय-विदा में मूंदता पंकज नयन, दे अर्घ मधु-रज।

शून्य नभ में एक नन्हा विहग,
पाँखों का किये संचलन द्रुततर।
चकित चहुँ दिशि जोहता मग,
खोजता है विकल निज घर।

जितनी छलती मृग-जल माया, उतनी मेरी आशा,
जितनी जलती मरु की काया, उतनी तृषा पिपासा।
जितना सूना ग्रीषम सरि-तट, उतनी मन की बेला,
जितनी पतझर की अकुलाहट, उतना करुण अकेला।

१४

तुम्हारे रूप का प्रतिबिम्ब तैरता है पुतलियों में,
कि जब मन के समन्दर में उमड़कर ज्वार आता है।
कि जैसे स्वर सुरभि का थिरकता है नई कलियों में,
चमन में रंग रस के गीत जब मधुमास गाता है।

जलाया भी नहीं मैंने तुम्हारे नेह का दीपक,
बुझाये भी नहीं बुझती तुम्हारे रूप की ज्वाला।
ज़माने की चुभन से फूटकर हर बार रिसता है,
नये रस से मगर हर बार भरता है नया छाला।

१५

हर पल छिन है रंगीन तुम्हारी सुधियों से,
हर पल छिन है बेचैन तुम्हारी चाहों में।

हर किरन तुम्हारी स्मित लेकर खिल उठती है,
हर लहर तुम्हारे खुले हृदय का स्पन्दन है।
हर परस पवन का नव वसन्त के आँगन में,
यौवन मद भर साँसों का मलयज चन्दन है।

हर दिवस तुम्हारी गलियों में बावला बना,
फिरता है जैसे ध्वनियाँ दिशि के अंचल में।
रजनी गंधा की कलियों सी खिलती झरती,
बिछ जाती है हर रात तुम्हारी राहों में।

वह कौन अजानी भोर सुहानी थी जिसमें,
अनजान चितेरा सुबरन ऐसा फेर गया।
धरती के मुख से घूंघट जैसे खिसक गया,
हो गई कली हर नयी हो गया फूल नया।

हर शाख सलोनी अभिलाषा से चहक उठा,
सपनों के नभ में पांखों को अवकाश मिला।
कुछ नया गीत लिख दिया तुम्हारी आँखों ने,
कुछ नया रंग लहराया चपल निगाहों में।

लहरों की इस सतही रंगीनी के भीतर,
क्या है प्रशान्त रत्नाकर का निस्सीम हृदय ।
इस तीर भटकते जीवन का परिचय बनकर,
कर रहा इशारे क्या कोई दूरस्थ प्रलय ।

इन आरोहों अवरोहों के हिचकोलों से,
जाने कितने पल छिन की है पहचान और ।
हर पल छिन का अमरत्व माँगती हुई किन्तु,
है पड़ी चेतना विवश तुम्हारी बाँहों में ।

हर पल छिन है रंगीन तुम्हारी सुधियों से,
हर पल छिन है बेचैन तुम्हारी बाहों में ।

१६

कि ज्यों ग्रीष्मांत सूने गगन पर उमड़े सरस बादल,
कि जैसे क्षितिज-लहरों पर उभरकर हो तरी चंचल।
उठे अंगड़ाइयां ले ज्यों विजन के वृन्त पर जूही,
अचानक मौन पर ज्यों मचल जाये मदभरी पायल;
थिरकती शून्य मन के तट, तुम्हारी याद फिर आई !

घिरे ज्यों रूप लतिका प्यार की उन्मत्त बाँहों में,
कि ज्यों लिपटे किरन तम से बसन्ती धूप-छाहों में।
हृदय से ज्यों सिमट जाये किसी की आंख का काजल,
पिपासा की ललक रस वेदना ज्यों घिरे चाहों में;
घनों सी झूमकर घिरकर तुम्हारी याद फिर आई ?

गगन के आँसुओं पर ज्यों किरन की प्रभा सतरंगी,
खिज़ां की सिसिकियों पर माधवी की सुधा-स्मित भंगी,
उषा की थपकियों से खुले जैसे नींद की पलकें—
कि जैसे दीर्घ-पथ एकान्त का सपना बने संगी;
बनाती अश्रु को शबनम तुम्हारी याद फिर आई !

तुम्हारी याद यौवन कलि कुसुम शर की चुभन-जैसी,
तुम्हारी याद अधरों के अधर से प्रिय मिलन-जैसी।

तुम्हारी याद जैसे किसी की मुसकान का जादू,
तुम्हारी याद लहरों पर समीरन के चरण-जैसी—
कि ज्यों हिंदोल के आरोह पर उन्मुक्त अंगड़ाई !

जगत के शत स्वरों को चीर कर इस याद का चुप स्वर,
हृदय ही बन गया है वेदना रस में पिघल गलकर,
कि यदि कुछ है नयन के, प्राण के आगे अगर, तो वह–
तुम्हारी याद का पाथेय, जीवन का विजन प्रान्तर,
तुम्हारी याद, साँसों में कि जिसकी सुरभि लहराई !
बनाती अश्रु को शबनम तुम्हारी याद फिर आई !

१७

यह पूनों की रात प्रान में बेचैनी है कह न सके मन,

विधु जागा यौवन की द्युति सा आकर्षण में कन कन बाँधे।
लहर लहर ने लिखा समर्पण किरन किरन ने मधु शर साधे,
किसी किशोरी की कहती आँखों सी मधु ऋतु रस छलकाती।
मुग्ध निशा के उघरे अंचल में तृष्णा सौ सौ बल खाती,
यह मधु का आघात सरस इतनी है पीड़ा कह न सके मन।

किसी उर्वशी के अलकों की पीकर सुरभि समीरन डोला,
किसी मेनका ने अधरों का तरल हास ज्योत्स्ना में घोला।
किसी पिकी के अस्फुट स्वर में डूब जगत खोया खोया है,
किसी वक्ष की धड़कन पर सिर रखकर जैसे नभ सोया है :
यह रस की बरसात विवशता इतनी है थिर रह न सके मन,

रूप रंग रस यौवन घट ले मन्द मन्द झनकाये पायल।
सज अभिसार चली पनिहारिन किस अरूप पनघट को चंचल,
मेरे अन्तर की पनिहारिन तट पर बैठी बिरहा गाये।
मन के भीतर सह न सकूं जो उमड़ घुमड़कर स्वर बन जाये,
रोके तीर तरंग बुलाये रुक न सके मन बह न सके मन ;
यह पूनो की रात प्रान में बेचैनी है कह न सके मन।

१८

मैं क्या करूँ कि ऐसा नाजुक मेरे जी का तार है,
जरा किसी ने छेड़ा झंकृत हो उठता संसार है।

विधना ने क्यों दिया मुझे मन लजवन्ती के पात सा,
नये प्रणय के चन्द्रातप में सकुच शरमती रात सा।
जैसे एक चिलक उठती है पके प्यार के घाव में,
चाहों की बेचैनी तिरती है पुतली की नाव में।
रुकता है मेहमान अजाना जब मन के आवास में,
महक किसी की मधुसांसों की जब घुलती है सांस में।
तब वसंत की तरुण शाख की कोकिल से स्वर छीनकर,
सौ-सौ सरगम स्वयं सिहर उठते हैं मन की बीन पर।
मेरे लिये यही स्वर-माया गीतों का आधार है,
मेरे लिये इन्हीं में रस है इनमें नई बहार है।

खिला फूल अधखिली कली हो अंकुर हो या बीज हो,
रूप रंग रस गंध स्पर्श की कैसी-कोई चीज हो।
नभ के तारों की महफिल हो या अंचल का दीप हो,
क्या है ऐसा धरा-गगन में जो उर के जो न समीप हो।
मेरे लिये प्रकृति सजती है रूप रंग अभिसार के,
किसी किशोरी की आँखों सी लिए इशारे प्यार के।

मेरे लिये प्रकृति कमसिन की अंगुली का मिज़राब है,
तरुण अरुण मादक हाठों से छलकी हुई शराब है ।
इस शराब की एक बूंद में डूबा मेरा प्यार है,
इस शराब की एक बूंद में सुख का पारावार है ।

इस संयम के रोक-थाम के लाज-शरम के गाँव में,
प्रेम चले तो कैसे डाले सौ सौ बेड़ी पाँव में ।
अगर दीठ लगने का डर हो, या पंथ का संकोच हो,
तो कैसे अल्हड़ पनिहारिन की थिरकन में लोच हो ।
प्यार तुरग, मुंहजोर न बांधा जाय लाज लगाम में,
ओज कहाँ हो बंधे प्यार के प्यासे सुबहो शाम में ।
काश किसी पर्वत झरने सा मुक्त-हृदय का स्रोत हो,
लहर लहर पर काश किसी के स्नेह दीप की जोत हो ।
जीवन कूलहीन सरिता की चिर-उद्वेलित धार है,
जिस पर चाँद हँसी बिखराता जिसमें उठता ज्वार है ।
मैं क्या करूँ कि ऐसा नाजुक मेरे जी का तार है,
जरा किसी ने छेड़ा झंकृत हो उठता संसार है ।

१६

किसी युग
आषाढ़ के पहले दिवस,
विरही किसी वर यक्ष ने
पाकर अनति-ऊँचे पयोधर श्याम-घन,
उनको चिरंतन प्रेम का दूतत्व दे प्रिय-देश भेजा;
प्रतीक्षाकुल यक्षिणी को प्रान का संदेश भेजा।

किसी युग के किसी दिन में
हुई आकस्मिक न ऐसी बात,
शापित,
स्वर्ग से भू पर पतित,
विरही अनेकों दग्ध यक्षों ने—
तरल दक्षिण पवन, जलधर,
जलधि गँभीर निर्झर—
प्रियतमा तक,
दूत युग-युग में अनेकों रूप, नाना वेश भेजा,
जान कर भी,
इस विरह की वेदना को हम न तब तक जान पाये।
किसी कवि ने,
युगों की इस बात को अमृत-स्वरों में बाँध,
प्रानों की सतत आकुल प्रिया तक
चिरंतन, निःशेष भेजा।

२०

उमड़े-घुमड़े मेघ सलौने घिरा-घिरा आकाश है,
भरी-भरी प्रानों की महफिल है, बेकाबू प्यास है।

थिरक चली पुरवैया जैसे चंचल कोई नार हो,
बेचैनी से चैन खोजता पहला-पहला प्यार हो।
जैसे सपनीली आँखों से छलका पड़ा खुमार हो,
जैसे किसी रेशमी स्वर की बिखर पड़ी झंकार हो।।

थिरक चली पुरवैया तट पर जल की लटें सँवारती,
खोई-खोई अभिसारिन का अंचल तनिक उघारती।
पनघट की एकाकी बिरहिन को छिन घड़ी दुलारती,
टूटे मन के तार जोड़ती रूठे को मनुहारती।।

दग्ध-राधिका के अंतर की पीर धरा के धाम से,
कहने चली थिरक पुरवैया नभ-वासी घनश्याम से।
इस थिरकन के रस में माती कली-कली में रास है,
उमड़े-घुमड़े मेघ सलौने............

बरस-बरस की प्यासी धरती बरस-बरस का दाह ले,
सूखी नदी, जीर्ण पतझर के उर की कसक कराह ले।
एक बूंद के लिए विकल अणु-अणु कण-कण की चाह ले,
एक बूंद के लिए अपर्णा की साधना अथाह ले।।

एक पीर बादल के उर में एक धरा के प्रान में,
एक पीर जो कसक-कसक उठती है कवि के गान में।
पीर न हो, तो धरती कैसे माँगे, दे घनश्याम क्यों,
पीर न हो, तो कवि की वाणी हो इतनी अभिराम क्यों॥

वही पीर सागर में हाहाकार, लहर में ज्वार है,
लेकिन उसी पीर को मिलता शरच्चन्द्र का प्यार है।
जीवन क्या है, पीड़ा के प्राणो का प्रणय विलास है,
उमड़े-घुमड़े मेघ सलौने...........

मन का यज्ञ बड़ा दुर्भागी जलता है अभिशाप में,
लेकिन कोई कहे कि यह निर्वासन है किस पाप में।
प्रेम गगन की चीज़ नहीं है धरती का श्रृंगार है,
और यज्ञ का यह निर्वासन पतन नहीं अभिसार है॥

लो आया आषाढ़ प्रेम की दुनिया अधिक अधीर है,
अलका है बेचैन रामगिरि के नयनों मे नीर है।
यह है ठीक कि दानिशवर दुनिया में प्रेम-प्रमाद है,
पर मन का अवलम्ब नहीं है प्रेम, प्रेम की याद है।
हो कितनी भी दूर रामगिरि तो अलका के पास है,
उमड़े-घुमड़े मेघ सलौने....... ......

आषाढ़स्य प्रथम दिवसे हे मनरंजन अभिराम हे,
धरती की जलती आँखों के अंजन हे घनश्याम हे।
मेघदूत हे, तरल पवन के पंखों पर निःशंक हे,
सूखे तृण तरु रसमय कर दो प्रेम मूर्ति अकलंक हे॥

शाश्वत प्यास धरा के उर की शाश्वत आह कराह है,
शाश्वत अणु-अणु की कण-कण की अमृत बिन्दु की चाह है।
शाश्वत जगती के आंगन में प्रेम-पीर अधिवास है,
उमड़े-घुमड़े मेघ सलौने घिरा-घिरा आकाश है।
भरी-भरी प्राणों की महफिल है, बेकाबू प्यास है॥

२१

यदि माटी की महक न साँसों में घुल पायी ,
माटी की छवि अगर न नयनों में झुल पायी,
बिसर गया अनजाने यदि माटी का दावा,
चंचल करता रहा अगर निःशब्द बुलावा,
तो अन्तर का बीज अँकुरित होगा कैसे ?
शाश्वत का आनन्द सत्य चित् होगा कैसे ?

२२

एक पीड़ा-सी उठी हृत-शान्ति-सी कुछ, श्रान्ति-सी कुछ,
स्वप्न-सुषमा की प्रभा-सी सत्य-सी कुछ भ्रान्ति-सी कुछ।
सुरा-सी जग गई, जैसे मूर्छना-सी भर गई हो,
श्वास-रंध्रों में अगुरु की गंध जैसे झर गई हो।
एक तंद्रा अंग में उतरी अलस रस-सी विरस-सी,
शिथिल चेतन में किये मन-भावना जैसे विवश-सी॥

मैं यहां हूँ—दूर जग से और जग के पास में हूँ,
वस्तु-चेतन से अलग मैं तत्व के आवास में हूँ—
गाँव में हूँ जहाँ लौकिक भी अलौकिक वेश में है,
जहाँ मानव चेतना शुभ मनुजता-आदेश में है।
जहाँ साँसें सरल, जिनमें तोष की माधुरी छहरी,
और चिर-आनन्द के जय-घोष की स्वर्गीय लहरी॥

रात है—विधु अपूरन अब भी शयित प्राची निलय में,
किन्तु तारों के कुसुम स्मित भर गये उसके उदय में।
और पूरब गगन में कुछ रजत, स्वर्णिम कांति उभरी,
किस परस से हिल उठी जाने पवन की शान्ति गहरी।
रूप-प्यासा कवि तभी मैं डूब छवि रस तरंगिन में,
बह रहा हूँ मुग्ध-सा जैसे चरम आसक्ति छिन में॥

और तब यह स्वर चिहुँक-सा कोकिला का या किसी का,
किन्तु इतना मधुर, हो उर-चीर जैसे उर्वशी का।
नव-प्रणय की प्रतीक्षा में मधुर प्रिय पद चाप-सा यह,
मिलन की निर्वाकता में प्रान के आलाप-सा यह।
मौन मन के तीर मनचाही हुई झंकृत किये-सा,
या कि प्रिय का मिलन छिन परिरम्भ में अमृत लिए-सा॥

यह किरन के तार-सा तम तैरता नभ नापता-सा,
यह लहर के ज़ोर-सा बढ़ता हुआ कुछ काँपता-सा।
अमा की निशि यह मलय की लहर मे उन्मुक्त लट-सा,
तनिक उभरे तनिक आवृत से प्रिया के वक्ष-पट-सा।
छिन ठहर छिन मुखर होकर झूमता सुर ताल लय में,
अरव रव के मोह सुख मुझको डुबाता लय प्रलय में॥

छू रहा है चेतना छू चेतना हत-ज्ञान करता,
और फिर इस अचेतन मे याद का वरदान भरता।
याद—कुछ भूली हुई कुछ अन्य कुछ अपने किसी की,
याद—कुछ अस्पष्ट कुछ हो स्पष्ट गत सपने किसी की।
और फिर इस याद मे छिन डूबता छिन भर उभरता,
एक ही संग चूमता जैसे कि लौकिकता अमरता॥

देह के बंधन शिथिल कर प्राण के चल पंख खोले,
गेह फिरते साँझ पंछी-सा पवन के संग डोले।
किस अजाने देश के उत्कर्ष नीरव निमंत्रण में,
विवश बहता हूँ कि जैसे मंत्र के अभिमुग्ध क्षण में।
अचेतन-सा पिये आसव की नशीली घूँट जैसे,
झूमता हूँ झूमती है पवन पीकर लहर जैसे॥

अतीन्द्रिय, जैसे प्रणय उन्माद की उल्लास लहरी,
उतर आई प्रान में बन सोम रस की घूँट गहरी।

मैं जलधि के ज्वार-सा नभ धरा के आकर्ष में बंध,
भ्रमित-सा ही मोह में प्रिय मिलन के सुख हर्ष में बंध।
मोह नभ के हर्ष क्षण में भग्न-सी करुणा धरा का,
मग्न अपने ही दुखों में शुष्क तन मन ले जरा का।।

मोह—मानव हूँ कि मानव मोह है माया घनी है,
मोह की ही मृत्तिका से मानवी प्रतिमा बनी है।
जो किरन के परस से दीपित बने हीरक कनी है,
जो सपन को सत्य जाग्रति दंश दे वह शर अनी है।
मोह मन-मंदिर जहाँ आनन्द आत्मा का निलय है,
मोह सुन्दर सत्य है आनन्द चिर मांगल्यमय है।।

कौंधती, तम रौंदती जब ओस की आलोक रेखा,
उतर नभ से समुद मेरा आँकती आनन्द लेखा।
तभी जैसे शप्त श्वासों के कलुषता घन घुमड़कर,
तभी जैसे तप्त आँसू के असित सागर उमड़कर।
खींचते हैं इन नयन के सामने तसवीर कैसी,
गगन के मुख-पृष्ठ पर मलिना धरा की पीर कैसी।।

और तब मन देखता है नाश का तांडव महोत्सव,
काल की क्रीड़ा वराकी मानवी का विभव, हत-भव।
यहाँ जल छवि दीप बुझता छोड़कर धूमिल निशानी,
आज नूतन कल पुरातन प्रेम है पथ की कहानी।
यहाँ यौवन कुसुम ही क्षयकीट का आलय बना है,
यहाँ उरजों में निरन्तर मुरझने का भय बना है।।
यहाँ जीवन में विकृति है और मरण में वेदना है,
यहाँ सुख है स्वप्न, मादक है कि मृगजल में सना है।
साँस तंत्री तरल विधि आघात झंकृत ही विवृत है,
कहीं असमय ही न तीखी हो—यही धृति है अमृत है।

बिलख शैशव अन्न के दो कौर को दो घूँट पय को,
नयन फाड़े दृष्टि कातर किये देखे किस सदय को ।।

काल कंदुक बना है जीवन समर्पण - सा मरण को,
किये हर आघात के चीत्कार में कम्पित गगन को ।
और यह चीत्कार खग-स्वर में न डूबेगा डुबाये,
मोह-सा अधिकार-सा यह कौन-सा मुझ पर जताये ।
धरा का अधिकार मानव पर कि मा का पुत्र पर ज्यों,
मोह वत्सल धरा का अलसित पलक पर स्नेह स्वर ज्यों ।।

धरा मेरी मातृभू है और उसके कष्ट मेरे,
उन्हें कर विस्मरित मुझको कौन से रस रंग घेरे ।
धरा मेरी है भले हो वह भली है या बुरी है,
किन्तु माँ है और इस अस्तित्व में मधु माधुरी है ।
जानता हूँ मैं धरा की चिरंतर करुणा कथा है,
किन्तु क्या भूलूँ कि इसके याद करने में व्यथा है ।।

कापुरुष, सब से पलायन कर किनारा काट जाऊँ,
धरा रोती रहे, रोती छोड़ मैं उन्मुक्त गाऊँ ।
और जैसे दीर्घ विन्ध्या से न उलझे हार खाकर,
बह चले रेवा छलकती-सी अगम बाधा बचाकर ।
ज़िन्दगी से ज़िन्दगी की विघ्न बाधाएँ दुराए,
जी न पाऊँगा विलग हो स्वप्न की दुनिया बसाए ।।

मूल है जब छिन्न, तरु मृत नहीं, तो क्या अन्यथा है,
अपालित मरु खिला-सा फल फूल की आशा वृथा है ।
पा धरा की साँस नभ की आस पर जीवित रहूँ मैं,
या यहीं फूलूँ फलूँ सुख दुख तरंगिन मे बहूँ मैं ।
अतनु होकर जी सकूँ कैसे कि तन का आसरा ले,
अंक से कैसे बिसारूँ अंग में प्यारी धरा ले ।।

लो इधर स्वर क्षीन हो उड़ चला जाने किस दिशा को,
और प्राची में उगा विधु प्रभासित करता निशा को।
स्वप्न-सा स्वर, ओस-सा क्षण भर, कि जो आये सवेरा,
पाँख खोले उड़ चला तरु शाख पर लेकर बसेरा।
सत्य ही तरु शाख ही अपनी, विहग अपना नहीं है,
मूल का फल फूल का जीवन महज सपना नहीं है।।

भला है यदि विहग आकर एक छिन भर कूक जाए,
किन्तु स्वर में भूल जीवन मधु न हम से चूक जाए।
तब अजाने हे विहग तुम रचो फिर फिर स्वर कथानक,
हम अभागे जी न पायेंगे पिये यह सुरापानक।।

शोणित और स्वेद माँगा है युग ने सदा जवानी से,
राष्ट्र बना है राष्ट्र बनेगा मृत्युंजय कुर्बानी से।

मृत्यु स्वयं ही जिनके चिर-जीवन के लिए दुआ करती है,
ऐसे पथ चलने वालों की मंज़िल नहीं हुआ करती है।
मंज़िलहीन अनन्त सफ़र है जिनका जीवन मरण पंथ पर,
जिनकी साँसों के पनघट पर मंज़िल खुद पानी भरती है।
क्यारी-क्यारी लहराती है जिनके सींचे पानी से,
राष्ट्र बना है राष्ट्र बनेगा..............

जो कि काल के रथ के द्रुत घोड़ों की रास थाम चलते हैं,
दिये धरा को अभय हथेली पर आकाश थाम चलते हैं।
जो चलते हैं सृजन-स्वप्न लेकर विनाश की असि धारा पर,
नई दिशाएँ नये क्षितिज पाने अविरत अकाम चलते हैं।
एक नया युग बन जाता है उनकी मरण कहानी से,
राष्ट्र बना है राष्ट्र बनेगा............

जहाँ कुटी पर व्यंग हँसी हँसते नभचुम्बी महल खड़े हैं,
जहाँ हृदय की लघुता के अनुपात लोभ के उदर बड़े हैं।
स्वेद अश्रु शोणित बनते हैं लक्ष्मी का शृंगार जहाँ पर,
पर लक्ष्मी के पद तल नीचे जिनके जीवन विवश पड़े हैं।

जहाँ तड़प दुर्दिन के नभ पर अग्नि लेख लिखती
बिजली-सी।
लिखती है इतिहास शहादत जलती तड़ित निशानी से,
राष्ट्र बना है राष्ट्र बनेगा..............

धरती की पद-दलित धूल में आँधी के आसार सँभाले,
खंडहर की ठंडी साँसों में विद्रोही अँगार सँभाले।
निर्माणों की नींव स्वेद आँसू शोणित से भरनेवाले,
झेल चलो यह काल-रात्रि अपने सिर हे शहीद मतवाले।
फूट रही है नई किरन की आभा छप्पर छानी से,
राष्ट्र बना है राष्ट्र बनेगा मृत्युंजय कुर्बानी से।

२४

जिस रोज प्रलय की तड़ित् चमक कर दुर्दिन में,
धँस ध्वस्त-त्रस्त कर गई अमा की छाती को,
ले गई मौत की शांति सांस के मरघट से,
दे गई क्रांति की किरण सिसकती बाती को।

भर गई गगन में एक सहमती खामोशी,
भर गई धीर धरती के अंतर में हलचल,
भर गई हवा में एक अनोखी बेचैनी,
हँस खिला गई तूफानो के रक्ताभ कमल।

उस रोज रंग, रस लिए कमल से, रोटी से,
बाग़ी चाहों से सपनों ने श्रृंगार किया,
उस रोज राष्ट्र की एक साँस थी एक हृदय,
जिसने आगे बढ़कर खतरों को प्यार किया।

उस रोज ज़िदगी जाग उठी अँगड़ाई ले,
महलों में, खंडहर, कुटियों, कब्र, मसानों में,
उस रोज बगावत का घन-गर्जन-भैरव स्वर—
ललकार उठा मुर्दों की बंद ज़ुबानों में।

उस रोज रक्त की प्यास लिए तलवारों में,
पद-दलित राष्ट्र का दर्प गरज कर बोला था,
उस रोज सात सागर की सीमा पार कहीं,
अन्यायी का सुवरन-सिंहासन डोला था।

उस रोज मस्तियाँ लुटा रही थीं झूम-झूम,
कुर्बानी साकी बन शोणित के जामों में,
सर कफन बाँधकर ढूँढ़ रही थी कातिल को,
उस रोज जवानी शहर, नगर, पुर, ग्रामों में।

उस रोज निराले ही नक्शे थे साकी के,
पीनेवालों की अदा अनोखी बाँकी थी,
उस रोज शहादत के मयखाने के आगे,
पहले मरने वालों की अद्भुत झाँकी थी।

उस रोज गगन को गुंजित कर झनझना उठीं,
बंदी हाथों की कड़ियाँ कुछ ऐसे स्वर में,
पहरेदारों का पत्थर का दिल दहल गया,
भय बनकर मौत समाई शासक के घर में।

उस रोज रंगीली दिल्ली दुलहिन बन आई,
उजड़े सुहाग में फिर सिंदूरी रंग आया,
रंगीन अवध की शामों में सुर्खी आई,
रंगीन अवध के जामों में जीवन गाया।

उस दिन बिठूर की गंगा के पावन तट पर,
उन्मुक्त राष्ट्र के संकल्पों का मेला था,
उस दिन झाँसी की गली-गली बन गई तीर्थ,
मासूम राष्ट्र जब तूफानों से खेला था।

उस रोज राष्ट्र की क्षमता के शर थे अचूक,
दुर्दम्य राष्ट्र की चाहों की जय-भेरी थी,
हाँ, समय नहीं था साथ, एक इतना ही था,
निशि ढले सुबह के होने में कुछ देरी थी।

वह सुबह आज आ गई हमारी किस्मत से,
प्राची के अंचल में सुहाग का छौना है,
यह बिसर न जाएँ आज कि इसकी सुर्खी में,
किन के बलिदानों का सिंदूर सलोना है।

उस रोज पराजय स्वयं विजय बनकर आई,
यह सत्य भले ही मत चारण इतिहास कहे,
हम उस दिन के गौरव के आगे नत-मस्तक,
हमको उस दिन के गौरव का अभिमान रहे।

२५

जिन ने अपनी साँस-साँस पर प्रलय-भैरवी गा दी,
खून सींच वीरान चमन को जिनने दी आबादी,
जंग हुआ क़िस्मत से जिनका और मौत से शादी,
जिनकी अमर शहादत फूली, फली बनी आज़ादी,
अरी कमल, उनके स्मृति-चरणों पर बिखेर निज प्यार,
आँसू की स्याही से लिख दे तू अजस्र आभार।

नामहीन कुर्बानी जिनकी इतिहासों को भूली,
भूल गई जिनके गौरव को कलाकार की तूली,
बनकर कसक न कवि के नयनों में जिनकी छवि
भूली,
किन्तु मरण पथ चल कर जिन ने स्वयं अमरता छू ली,
जो बन नींव गड़ गये, जिनको भूल गया प्रासाद,
अयि कृतज्ञते, आज पर्व है कर ले उनकी याद।

स्वर्ण-कलश प्रासाद खड़ा है उन्नत शिर अभिमानी,
किन्तु झलक जाती है इसमें कोई स्मृति अनजानी—
शायद उनकी, धो न सकेगा युग जिनकी कुर्बानी,
राष्ट्र मुक्त करने में जिनकी रज में मिली जवानी,
शून्य भवन के किसी शून्य कोने में दीपक बार,
अरी विजय उनकी किरनों से तू निज साज-सँवार।

समय स्रोत, साँसों का बजरा, मौसम की नादानी,
यौवन बढ़े खड्ग के पथ पर, रोके आँधी पानी,
कूल न जिन्हें कैद कर पाया, गति ही जिनकी गाथा,
रे चारण इतिहास झुका दे उनके चरणों माथा,
उनकी पद रज बीच भँवर में देगी ऐसी ओत,
पथ जिसके प्रकाश में पायेगा भविष्य का पोत।

२६

सजग रह प्रहरी !
सजग रख उर की शमा रे, है अमा गहरी।

है अमा निश्चिन्त तुझको सौंपकर थाती,
किन्तु रे, घर की न तेरे मलिनता जाती।

जी रहा है दैन्य अब भी थाम तम का चीर,
पी रहा है रक्त उर का दनुज दावागीर।

बिलखती है क्षुधित मानवता उदर दाबे,
डोलती है क्रूर हिंसा हड्डियाँ चाबे :

रूप - जीवी कहीं कंचन-स्वरों में गाती,
कहीं मंदिर देहरी पर चपल मुसकाती।

कहीं सत्ता की थिरक पर ताल-सी देती,
काटती है कहीं पर दुष्काल की खेती।

और करुणा तिरस्कृत-सी लटें बिखराये,
दीनता के दो नयन में नीर छलकाये।

बाँचती है अश्रु भीगा जिंदगी का लेख,
है खिची जिस पर कनक से कालिमा की रेख।

कनक, जिसने साँस कर दी राख की ढेरी,
कनक जिसकी बन गई है मनुजता चेरी।

कनक, जिसकी दे रहा है काल भी फेरी,
कला कलुषित छेड़ती जिसकी विजय-भेरी।

पैर में अब भी पड़े हैं उस कनक के पाश,
शेष है अब भी दनुज की उस कनक की प्यास।

फिर कहाँ हम मुक्त, टूटी है कहाँ जंजीर,
है लटकती शीश पर अब भी वही शमशीर,

वही जिसकी खिलखिलाती खून प्यासी धार,
सर्पिणी-सी कर गई चट नेह की मनुहार।

पी गई निष्ठुर बनी जो बेकसों का खून,
रक्त से लिखने चली उत्कर्ष के मजमून।

लूट कितना स्नेह, ठंडे कर हजारों दीप,
छीनकर मोती कि जिसने रोंद डाले सीप।

प्रकट सौ-सौ रूप में है आज वह शमशीर,
कहीं है सत्ता, धरे जो द्रौपदी का चीर।

कहीं है नेता नगर चिन्ता निरत सित पोश,
नरक भी हो जाय जिनके सामने खामोश।

गंध पाकर चौंकते से फड़फड़ाकर कान,
मेमनों का भला करने चले हिंसक श्वान।

मानवी की आखिरी साँसें मरण के द्वार,
पर उन्हें भी छीनने यह जश्न, यह त्यौहार।

सभ्यता का स्वाँग धर छिपकर धरम की ओट,
सेवियो रे, स्वार्थहित यह घृणित लूट-खसोट।

देवता को सृष्टि करने जा रहे क्यों व्यर्थ,
अर्थ से क्यों तौलते हो मोक्ष की सामर्थ्य।

झूठ के सिक्के चला यह ढोंग का व्यापार,
भर रहे हो खून से निःशेष रत्नागार।

किन्तु यह चोरी चलेगी और कितने रोज,
बेबसी के वक्ष पर सत्ता-कनक के भोज।

सर झुकाये सहा जाये कहाँ तक संहार,
आज है यह काल-यामा, सजग पहरेदार।

आज सत्ता के कनक जड़ मूल को झकझोर,
जागते रहियो कि तेरे घर लगे हैं चोर।

रात सब की नींद, पर है जागरण तेरा
आँक दे जो ज्योति तम पर वह चरण तेरा

तू जगाये रख अलख रे रात भर, योगी,
युगों की बिछुड़ी कभी तो भोर फिर होगी।

आज तुझ पर ही सभी की दीठ है ठहरी
सजग रह प्रहरी!

२७

सुना है : नभ मे कहीं कोई धरा का देवता है,
सुना है मैंने न देखा है न उर को ही पता है,
सुना है संसार-रक्षा उसी के कृति-जाल में है,
उसी की अनबूझ इच्छा-रेख जग के भाल में है ।

सुना है मैंने कि मंगलमय सदय है, सदाशय है,
वरद छाया तले उसकी कौन दुख है, कौन भय है,
उसी का आभास शत-शत रहस्यों में झाँकता है,
उसी के सपने जगत का जीव तन्मय आँकता है ।

कह रहा हूँ उसी प्रभु से मैं सहस्र सम्बोधनों में,
गिरे मन के अनमने, नैराश्य से आवृत क्षणों में,
हे भले भगवान, रचकर साँस के चैतन्य छौने,
क्यों बना डाला अबूध शिशु के उन्हें छूँछे खिलौने ।

और उनसे खेलते हो खेल शत जीवन-मरण के,
भाल पर आघात लिखकर काल के निर्दय चरण के,
हैं तुम्हारे नाम सौ-सौ और सौ-सौ हैं विशेषण,
सर्व-सुखदायी, दयामय, कृपानिधि, करुणा-निकेतन ।

अमंगलहारी, निबल-रक्षक कि मंगलकरण हो तुम,
दीन के बल, न्याय के अधिकरण, अशरण-शरण हो तुम,
सत्य हो, शिव हो, अखिल सौंदर्य के वरुणा-निलय हो,
आदि सर्जक हो, कलानिधि हो कि चिर-साहित्यमय हो ।

पर नहीं अनुरूप इनके है तुम्हारी सृष्टि हे प्रभु,
औ' न सम सब पर तुम्हारी दया की दृष्टि है प्रभु,
मुझे लगता है कि यह निर्माण है दुर्बल क्षणों का,
हुआ है उपयोग जिस निर्माण में अनमिल कणों का।

सृष्टि ऐसी है न जिसमें व्यवस्था है, क्रम नहीं है,
निवृति दुख है नहीं औ सुखों का आगम नहीं है,
यहाँ अनियम ही नियम है, यहाँ असमय ही समय है,
यहाँ सब कुछ कर न क्या हो जाय इसका सदा भय है।

अनय रावण ने यहाँ पाखंड से त्रैलोक्य जीता,
स्वर्ण लंका में यहाँ पर बंदिनी है पुण्य सीता,
साधता है तीर रति-पति लक्ष शिव के वक्ष को कर,
यहाँ जीवन-द्वीप को, आवृत किये है मरण सागर।

यहाँ खिलती हुई कलि अधखिली ही हतनाल होती,
यहाँ असमय फूल झरता है बिलखकर अली रोती,
दिवस की चाहें निराशा-अंक मे सोती यहाँ हैं,
रात के आँसू उषा की गोद के मोती यहाँ हैं।

यहाँ गाती है शिखी तो चीख उठता है पपीहा,
यहाँ पीड़ा के दिलों का दर्द ही होता मसीहा,
यहाँ ताकत हिंस्र पशु-सी बेकसों को चाट जाती,
जिंदगी पाने यहाँ राहत मरण के घाट जाती।

यहाँ छल पतवार लेकर स्वार्थ-स्वर्णिम तरी खेता,
पहुँच जाता है अगम यश की नदी के पार नेता—
पहुँचता है, क्या हुआ यदि गया कुम्भीपाक होकर,
सत्य साधक टापता है तीर पर निर्वाक होकर!

यहाँ अंचल पूर्ण हैं वे, जो कि पद रज से भरे हैं,
रिक्त-अंचल शीश पर अभिशाप जीवन का धरे है,
यहाँ पण्डित हैं वही, जो है कि लक्ष्मी के पुजारी,
यहाँ वाणी के सफल वर-पुत्र हैं पथ के भिखारी।

यहाँ वह है धर्म, कर दे जो कि कंचन-युक्त काया,
प्राण में भर दे कि जो मद लालसा की मुक्त माया,
श्वेत पद्मासना पर भी पीत-कंचन वर्ण छाया,
हाय, वाणी ने विनत होकर उसी का गीत गाया।

पीत कंचन ही बड़ा है उसी में सब कुछ बसा है,
उसी के युग बंधनों में तुम्हारा मानव कसा है,
कसा ऐसा है कि जिससे मंद है गति नज़र धुँधली,
कसा ऐसा है कि उसकी चेतना बन गई पुतली।

कसा ऐसा है कि सत्ता भी स्वत: की भूल बैठा,
हुआ इतना दीन, यदि कुछ मिल गया तो फूल बैठा,
कहीं कुछ मिल जाय, इतनी ही बना ली बान उसने,
कनक को माना सकल इन्सानियत की शान उसने।

सुना है मैंने, तुम्हारी है यहाँ अक्षुण्ण सत्ता,
तुम्हारे आदेश बिना पाता नहीं हिल एक पत्ता,
देखता हूँ, आज पा कंचन हवा के मुक्त झोंके,
डोलते हैं पात, डोलेंगे तुम्हारे लाख रोके।

फिर कहाँ सत्ता तुम्हारी, फिर कहाँ गौरव तुम्हारा,
बन गया है ठीक भस्मासुर सकल यह भव तुम्हारा।

क्या करें इस सृष्टि का, क्या करें ले भगवान ऐसा,
क्या करें हम जिंदगी के लिए लेकर गान ऐसा,
जो कि जीवन को बना दे एक माटी का खिलौना,
जो कि जीवन से मिटा दे स्वाद जीवन का सलौना।

आँख को कंचन-किरन की चकाचौंधी जो दिखा दे,
जो कि कंचन कसौटी पर मनुज को कसना सिखा दे,
जो तुम्हारे नाम पर सौ-सौ बना मन्दिर-शिवाले,
कनक के सुर-ताल से सारा तुम्हारा अजिर छाले।

तुम गढ़ो अपने करों से साँस के चैतन्य छौने,
कनक कर डाले अबुध शिशु के उन्हें छू छे खिलौने,
अगर ऐसी ही तुम्हारी सृष्टि, ऐसी ही कला है,
नष्ट हो जाये कि उसका नष्ट होना ही भला है।

सृष्टि का अधिराज कंचन बने, ऐसे दीन हो तुम,
और फिर भी मन्दिरों में गर्व से आसीन हो तुम,
क्या तुम्हारी सार्थकता है, प्रयोजन क्या तुम्हारा,
कौन से उपयोग की है तुम्हारी कारुण्य धारा।

उठाकर मंदिर, दिवालें घेर, ढँक ऊँचे कलश से,
तुम्हें पत्थर बना सज्जित कर कनक के रंग-रस से,
लग गया इन्सान अपने ही हजारों स्वार्थों में,
बिक गया इन्सान सोने की दुकानों में पथों में।

तुम बने पाषाण देखा ही किये हिल डुल न पाये,
स्वर्ण मंदिर में तुम्हारे मानवों ने पाप गाये,
दीनता की कब्र पर ऊँचे महल निर्मित हुए हैं,
नयन के आगे तुम्हारे विहत मानव-हित हुए हैं।

हाय तुम देखा किये मिट गई फूलों-सी जवानी,
चार काँधों नेह का राजा चला लुट गई रानी,
व्यस्त पेशे में रहा डॉक्टर, उसे फुरसत कहाँ है,
व्यस्तता उसकी सकल उस ठौर है, कंचन जहाँ है।

देखते तुम रहे पावन धर्म गंगा के किनारे,
स्वर्ग जाने के लिए व्यापार के सौ-सौ नज़ारे,
देखते तुम रहे लोलुप धर्म सत्ता स्वार्थ शीला,
श्वेत वाणी, या कि अरुणिम धर्म, सब पर रंग पीला।

सुना है नभ में कहीं तुम हो, जहाँ से देखते हो,
जहाँ से इन्सान के सत को, असत को लेखते हो,
बैठकर करते जहाँ तैयार सबका भाग्य लेखा,
खींचते हो जहाँ सबके भाग्य की सित-श्याम रेखा।

अगर ऐसा ही तुम्हारी सृष्टि का क्रम है विधाता,
जगत रचने का तुम्हारा व्यर्थ सब श्रम है विधाता,
सुना है मैंने, न देखा है, न उर को ही पता है,
लोग कहते हैं, कहीं नभ में धरा का देवता है।

अगर यह है भूठ, तुम हो नहीं, केवल कल्पना हो,
और यदि यह कल्पना ही ठग रही है जगत भर को,
सत्य मानो कल्पना यह अब न ज्यादा रह सकेगी,
मूढ़ धारा में जगत की मति न ज्यादा बह सकेगी।

और यदि तुम हो कहीं पर स्वर्ग लेकर नर्क लेकर,
गढ़ रहे हो एक से इन्सान सौ-सौ फर्क लेकर,
सोचते हो, तुम बड़े हो, देवता हो, भरम हर दूँ,
मैं तुम्हें चेतावनी दूँ, मैं तुम्हें आगाह कर दूँ—

सृष्टि की ऐसी गलत क्रम-व्यवस्था कैसे चलेगी,
जगेगी प्रतिहिंस मानव एक दिन दुनिया जलेगी,
भूठ मत मानो, सुनो, वे दूर कोई गा रहे हैं,
गीत के सुर ताल-लय में प्रलय-वन्हि जगा रहे हैं।

आ रहे हैं सृष्टि करने भस्म वे सब आग लेकर,
आ रहे हैं नये युग के लिए नूतन राग लेकर,
नये युग का कारवाँ नव-गीत गाता आ रहा है,
लाख तुम रोको, तुम्हारी सृष्टि पर वह छा रहा है।

बहुत दिन तुमने विवश इन्सान को पग तले रौंदा,
अब जगा है वह ढहाने सृष्टि का कंचन-घरौंदा,
तुम्हारी रहने न देगा एक भी बाकी निशानी,
स्वप्न-सी मिट जायगी यह सृष्टि, धोखे की कहानी।

ये गगनचुम्बी महल हिल रहे हैं, खण्डहर बनेंगे,
और सोने से लदे भगवान माटी में सनेंगे।

२८

आज स्तब्ध हूँ, ज्यों कि समन्दर तूफानों के पहले,
जिसमें सहम-सहम जाते हैं किश्ती, कूल-किनारे।
जिसमे धीर प्रकृति भी आशंका से, भय से दहले—
क्रीत विकृति के पोत कि जिसमें बह जायेगे सारे।

आज क्षुब्ध हूँ, भँवर कि जैसे, या कि बवण्डर जैसे,
जो अपने भीतर के बल से घुमड़-घुमड़ आया है।
तुच्छ स्वार्थ के तिरन-तनूके बच पायेंगे कैसे ?
उन्हे निगलने क्षुधित क्षोभ ने अपना मुँह बाया है।

आज क्रुद्ध हूँ, प्रलय-मेघ का ऐसा गर्जन लेकर,
इस कलंक की धरती के हित तिरस्कार हो जिसमें।
आज डूबने को है कायर, याचक, क्लीवों के स्वर,
आज सृजन से अधिक प्रलय के लिए प्यार हो जिसमे।

२६

यह है गली एक की सब की यह केवल राजा का पथ है,
यहाँ भीड़ शत सहस लक्ष की यहाँ एक राजा का रथ है।
यह चौड़ा पथ खड़ा हुआ है लिए दम्भ की पत्थर छाती,
लज्जा छिपा न पाती सकरी गली पड़ी है सकुच लजाती।

पथ के दोनों ओर बाग़ हैं वासन्ती फूलों कलियों के,
जहाँ कहकहे चलते हैं तितली भौरों की रंगरलियों के।
पथ के दोनों ओर वासना से प्रदीप्त दीपक जलते हैं,
जिनके नीलम के प्रकाश में तृष्णा के पंछी पलते हैं।

पथ के दोनों ओर थिरकते हैं तितली भौंरे मधुमाखी,
पथ के दोनों ओर चहकते हैं नीले प्रकाश के पाखी।
स्वयं भाग्य की तरुण आत्मजा का बाँका आशिक यह पथ है,
और गली की बूढ़ी काया कीचड़ में लथपथ है श्लथ है।

गली कि जैसे तड़प रहा आसन्न-मृत्यु पक्षाहत पाखी,
गली कि जैसे जीवित शव पर भिन-भिन भिनक रही हों माखी।
गली कि ज्यों हो धू-धू करती ग्रीषम की सूनी दोपहरी,
गली कि जैसे दुर्दिन संध्या की मलीन तम छाया गहरी।

गली अभागी क्षीण नदी-सी जिसका सूख गया है पानी,
गली कि जैसे किसी भाग्य के ठुकराये की कातर वाणी।

दोनों ओर गली के करुणा का पुरनम नाटक होता है,
आशा विधवा-सी फिरती है सुख अनाथ शिशु-सा रोता है।

निष्फल निश्वासों के कम्पन में बजते हैं प्राणों के स्वर,
मरण चढ़ा जीवन के कांधों चलता है अपनी मंजिल पर।
दोनों ओर गली के धरती रोती है किस्मत हँसती है,
दोनों ओर गली के कर्दम में कृमि कीटों की बस्ती है।

यहां धरा है सहमी-सहमी नभ संकुचित कृपण के उर-सा,
यहां पवन आ चल जाता है करुणा से विह्वल आतुर-सा।
जल मटमैला यहाँ सिमिट कर बैठा है आँखों के भीतर,
आगी की चिनगियां चिहुँक बन-बनकर जला रही हैं पिंजर।
सूरज की किरनें, ऊँहूँ, धुंधला प्रकाश-सा आ जाता है,
छूने में ग़रीब को जैसे शुभ्र वेशधर शरमाता है।
कहां-कहां की कैसी-कैसी दारुण चिन्ताओं से पागल,
श्मशान के निपट मौन-सी रहती है जीवन की हलचल।

सही सांझ से बुझा-बुझा-सा रहता है चिराग मुफलिस का,
और गली चुप हो जाती है जैसे घूंट पिये हो विष का।
यह है गली और यह पथ है दोनों का इतिहास अलग है,
उसकी दुनिया रंगरंगीली इसका तम आच्छादित जग है।

इसके श्रम-कन शबनम बन सज्जित करते हैं उपवन पथ का,
इसका वक्ष कुचलता चलता है द्रुतगामी पहिया रथ का।
पथ कैसा किस्मतवाला है गली कहां की भाग्यजली है,
वक्ष कुचलता जाये जो रथ उसके आगे विवश डली है।

जिस दधीचि की वज्र अस्थि से निर्मित है इस पथ का
वैभव,
रथ के चक्र कुचलते जायें दीन दुखी उसका जीवित शव।
गति का और प्रगति का यह कैसा विधान यह कैसी गाथा,
पथ के रथ के तले पतित है विवश विपन्न गली का माथा।

३०

यह वैषम्य विधान कि जिसमें भरा-भरा कंचन घट छलके,
किसी शोख की स्मित की खातिर किसी आंख से आंसू ढलके।
यह वैषम्य विधान बहुत दिन सहा गली ने अब न सहेगी,
अब न किसी की हँसी किसी की आंखों का बन अश्रु बहेगी।

जाग उठी है गली कि जैसे नई भोर में जीवन का स्वर,
जाग उठी है गली कि जैसे नई किरन में जल थल अम्बर।
जाग उठी है गली कि जैसे नया फूल जागे पतझर में,
जाग उठी है गली कि जैसे नई सांस जागे खंडहर में।

पथ के महल अटारी पथ के बाग-बगीचे फूलों वाले,
गली फोड़ती रही निरन्तर जिनकी निष्ठुरता के छाले।
ये सब महज फालतू श्रम हैं यह सब महज निरर्थक खेती,
ये सब बेबुनियाद कि जिनकी तह में है गहरे तक रेती।

बिना नींव के महल अटारी बिना आब के बाग-बगीचे,
अब न गली के प्राण कराहेंगे इनकी मिट्टी के नीचे।
जाग उठी है गली रेत के महल ढहेंगे धूल बनेंगे,
ये विष के फल-फूल छिन्न होंगे आंधी के तूल बनेंगे।

गली गरीब और पाखंडी पथ दोनों मिट जाने को हैं।
पतझर के दिन चुके क्यारियों में स्मित के क्षण आने को हैं।

३१

(१)

गिरे समय की रगों में शबाब आयेगा,
खिज़ा की क्यारियों में नूरो-आब आयेगा,
कोई न रोक सका है हयात का दरिया,
क़ौम मायूस न हो, इन्कलाब आयेगा।

(२)

अंधेरी रात, डूबा हुआ क़िस्मत का सितारा,
दिशाएँ चुप कि जैसे बेबसी का हो पसारा,
निशा के जीर्ण बंधन तोड़कर लो फट गई पौ,
हमें है क्रांति की पहली किरन, तेरा सहारा।

(३)

फ़लक के अश्क भरी-स्याह रात बाक़ी है,
अभी कटी हैं बेड़ियाँ, नजात बाक़ी है,
अभी तो ख़ार जहर के हैं ग़म की शाखों में,
किरन की गोद, गुलों का प्रभात बाकी है।

(४)

उमीदो-ग्रास गई ढल कि ढल गया सूरज,
जमीं पै बन के क़फन छा गये हैं जुल्मतो-गम,
बुझे न मौत से वो जिन्दगी की लौ बनकर,
फलक पै उड़ रहे हैं इन्कलाब के परचम।

३२

ज्ञान चला है तहें उठाने अन्तर अन्तरतर की ,
नाप रहा विज्ञान दूरियाँ वसुधा की अम्बर की ।
धरा-गगन के बीच भले सब कुछ नापो अन्वेषो ,
बाहर की सुधि लेने वाले सुधि लो अपने घर की ॥

२३

बहुत किया निर्माण मिला कांधे से कांधा ,
भवन उठाए नभचुम्बी बांधों को बांधा ।
नगर-नगर बरसी पूँजी ज्यादा से ज्यादा ,
गाँव-गाँव में श्रम की गंगा बही अबाधा ।

बाहर-बाहर बना किन्तु मन की गहराई ,
रही अछूती, आँख वहाँ तक पहुँच न पाई ।
की है छल ने जहाँ बिना आयास कमाई ,
उठी दिवारें, हुई और भी गहरी खाई ।

बाहर-बाहर बना किन्तु अन्तर में गहरे ,
डोल रहे हैं भीतिग्रस्त मायावी चहरे ।
क्या होता है लाख लगा पनघट पर पहरे ,
रंध्रपूर्ण जब कलश, कहाँ तक पानी ठहरे ।

सब भूले हैं संग-खिश्त की चकाचौंध में ,
कौन समझ पायेगा मेरी पीर को ।
निर्माणों के बीच भटकता खोज रहा हूँ ,
मैं मानव के टूटे हुए ज़मीर को ।

३४

हरी-भरी जमीन हो, शहाब आसमान हो,
हसीन हो ये ज़िन्दगी, ये ज़िन्दगी जवान हो।

सुबह् की ओस में नहा के जब निखर उठे चमन,
सियह् नकाब रात का उठाके झाँक दे किरन,
सँवार दे प्रभात पद्म जब गगन के बाग को,
हवा में झूमकर सुरूरे-जिंदगी मचल उठे,
सुहाग बन के हर जगह, सुबह् का नूर जल उठे।

हो एक गीत तब लहर-लहर पै फैल जाय जो,
हवा में तैरती किरन-किरन में मुस्कराय जो,
जो गीत रक्स बन के शाख शाख पै थिरक उठे,
जो बन के जिंदगी की साँस आसमान तक उठे,
जो गीत फूल को कली को मोतियों की आब दे,
सुवर्ण दे, सुगंध दे, सुहास दे, शबाब दे।

जो गीत दर्द के दिलों में प्यार बन महक उठे,
जो गीत पंछियों की मुग्ध तान बन चहक उठे,
जो गीत बन के जागरण, झँझोर दे खुमारियाँ,
जो सींच दे सुकूँ के नीर से चमन की क्यारियाँ,
जो आग बन, गरीब आँसुओं को इन्कलाब दे,
जमी की गर्द को, गुबार को, गगन का ख्वाब दे।

हो एक गीत जो नवीन हलचलों पै ताल दे,
जो जिंदगी की, किश्तियों की, किस्मतें सँभाल दे।
निराश मन के अन्धकार में प्रदीप बाल दे,
नवीन रंग में मनुष्य का स्वरूप ढाल दे।
जो बन के प्यार की किरन सुकून दे, सुरूर दे,
मनुष्य है, मनुष्य को अमन्द ये गुरूर दे।

सुबह हुई समाज को सुबह का गीत चाहिये,
नये समय की साधना, नवीन रीत चाहिये।
वे गीत चाहिये कि जो, नई प्रतीति आँक दे,
मनुष्य के बुझे हुए दिलों में प्रीत आँक दे।
जो गीत इन्कलाब फूंक दे हर एक साँस में,
नये सृजन सँवार दे, प्रभात के प्रकाश में।

जहाँ न दीन हो ज़मीं, जहाँ मनुज महान हो,
हसीन हो ये ज़िन्दगी, ये ज़िन्दगी जवान हो।
नसीम मस्तियाँ बिखेर दे शफ़क़ के फूल से,
निखर उठे नया गुलाब फिर ज़मी की धूल से।

जिस रोज़ कुटी के द्वार नई किरनें लेकर,
युग की दुलहिन जीवन की आँखें खोलेगी।
जिस रोज दूर के नये क्षितिज को छूने को,
मज़लूम चेतना जाग थिरककर डोलेगी।
जिस रोज़ तड़ककर टूट-टूट गिर जायेंगी,
सदियों की जर्जर ज़ंजीरे अनरीतों की।
जिस रोज़ ज़ुबानें दबी हुई फिर उभरेंगी,
बनकर आजाद उमंगें दिलकश गीतों की।
जिस रोज़न साँसों पर कोई पहरा होगा,
जिस रोज़ न कोई बंधन होगा जीने पर।
जिस रोज़ न कुछ के शोषण की निष्ठुर नींवें,
जम पायेंगी बहुतों के सूखे सीने पर।
जिस रोज़ न चू पायेंगी शोणित की बूँदें,
श्रम की निराभ आँखों से, लौह मशीनों से।
जिस रोज़ न ऐशो-इशरत की सिंच पायेंगी,
बेहया क्यारियाँ बेबस ख़ून-पसीनों से।
जिस रोज़ सुखों की सिहरन बनकर लहकेंगी,
खेतों-खेतों में पकी बालियाँ अन्नों की।
जिस रोज़ झरेगी घटा, चलेगी पुरवैया,
ठंडी करती छाती असहाय, विपन्नों की।
उस रोज़ मिलेगा रूप हमारे ख्वाबों को,
उस रोज़ देश का मुर्दा ख़ून रवाँ होगा।
उस रोज़ शहादत की सुर्ख़ी रंग लायेगी,
उस रोज़ हमारा नन्हा राष्ट्र जवाँ होगा।

३५

माखनलाल चतुर्वेदी

वर्ण्य को अभिरूपता दे रूप को स्पन्दन ।
भावना की गीतमयता गीत की गुंजन ।।
अनागत को नया स्वर-धन नया अभिव्यंजन ।
प्रलय जड़ता को प्रलय को मलय का चन्दन ।।
बन्ध को सम्बन्धता देकर सहज सँवेद्य ।
अपरिचित को स्मित किरन दे एक सूची भेद्य।।
स्वस्ति कुंकुंम विहित तुमने किया युग का भाल ।
एक हीरक युग कि जिसका नाम माखनलाल।।

३६

वृन्दावनलाल वर्मा

उम्र नहीं छू पाई जिसके चिर-यौवन की कांति ।
जिसकी कृति में ओज कर्म का और सिद्धि की शांति ।।
साधे जिसने लक्ष्य हाथ ले कलम और बन्दूक ।
लक्ष्य असाधारण है जिसका औ सन्धान अचूक ।।
पत्थर हुआ सजीव की जिसकी पाकर प्रतिभा टाँकी ।
जिसने वर्तमान के पट पर छवि अतीत की आँकी ।।
देख रही है मुदित मंत्र-मुग्धा श्रद्धा यह बाँकी—
झाँसी के अपराजित गढ़-सी वृन्दावन की झाँकी ।।

३७

महादेवी वर्मा

बिन्दु को सिन्धुत्व देकर वेदना को गान ।
ज़िन्दगी की विवशता को दे अमर अभिमान ।।
विरह के निस्सीम कल्पों को निमिष से नाप ।
अंक में बाँधे हुए हो प्यार-सा अभिशाप ।।
दीप-सी जल भाल पर ले ज्वाल का जय-केतु ।
तिर रही हो काल लेकर आँसुओं का सेतु ।।

३८

बापू

बापू एक किरन है जिसमें अखिल ज्योति का घर है ।
एक किरन बंदी जिसमें तम का जल थल अम्बर है ।।
बापू एक बूद है जिसमें पारापार भरा है ।
एक बूँद जिससे पृथ्वी का द्वीप-समूह हरा है ।।
बापू एक साँस है जिसमें संस्कृति डोल रही है ।
एक साँस है जो जीवन के बँधन खोल रही है ।।
बापू है क्षण एक मरण के पार समय जो बाँधे ।
बापू है क्षण एक अमरता जिसके पग आराधे ।।
देश काल निस्सीम कर रहे जिसका स्मृति अभिषेक ।
वह है छोटी किरन बूँद वह एक साँस क्षण एक ।।

३६

सरदार वल्लभभाई पटेल

टूटे बिखरे तार जोड़कर गढ़कर नई सिंगार।
मूक देश की वाणी को दे नव लय स्वर झँकार ॥
वादक, तुमने शून्य अचल पर स्वर की हलचल छा दी।
गिरे देश की किस्मत तुमने गीत बनाकर गा दी ॥
तुम अविचल संकल्प अबाधित गति अरोक अभियान।
साँसों में विप्लव लेकर चलने वाले तूफ़ान ॥
तुम जिसके आगे कि दर्प के शीश झुके या टूटे।
मुकुट रत्न चरणों में लौटे या फिर रज ने लूटे ॥
सिरजन के सपनों से कोमल कृति के कठिन कठोर।
तुम दृष्टा स्रष्टा जिसके हाथों में युग की डोर ॥
तुमने समय सिन्धु को अनुचर कर अनुकूल बनाया।
जिस तरंग को जिस रुख चाहा तुमने सहज बहाया ॥
बिजली बनकर हर कल्मष पर गिरने वाले रोष।
तुम दृढ़व्रती कर्म के स्वामी रागहीन संतोष ॥
लौह-पुरुष तुमने पारस की क्षमता हम में भर दी।
तुमने छूकर मलिन देश की काया सुबरन कर दी ॥
जो अरूप सपनों को छवि दे तम को मंगल जोत।
क्रूर काल के अश्म हृदय पर सजनेवाले पोत ॥
अजर सृजन की अक्षय बल की सुरभिमयी जयमाला।
तुमने गढ़कर स्वयं मरण को आज अमर कर डाला ॥

४०

डा० राजेन्द्रप्रसाद

हे युग के सिद्धार्थ बुद्ध के चिर-अनुरत अनुगामी।
हे साधक निष्काम, अयाचित परम सिद्धि के स्वामी॥
हे विनीत, हे हिमगिरि-गौरव-से उत्तुंग उदार।
हे शिशु निश्छल हृदय, सिन्धु-से हे गम्भीर अपार॥

हे प्रशान्त, ज्यों आत्मजयी की सरल-तरल स्मित-रेखा।
हे प्रशान्त, जिस के नयनों में तुष्ट सुकृत का लेखा॥
संसृति के स्वर्णांकित मस्तक पर चन्दन की रेण।
संघर्षों के कोलाहल में अन्तरतम की वेणु॥

कोटि-कोटि मन-मंदिर मंगल मूरत, हे बड़भागी।
हे जीवनमय अनुरागी, हे जीवनमुक्त विरागी॥
हे अतीत से वर्तमान तक समय-सिन्धु के सेतु।
भारत की गौरव-गरिमा के जय-स्तम्भ, जय-केतु॥

कोटि-कोटि जन-मन अधिनायक भारत-भाग्य-विधाता।
कोटि-कोटि प्राणों के पालक, चालक, रक्षक, त्राता॥
पतित दलित मानव के गौरव, हे अनाथ के नाथ।
कोटि प्राण बिकने न दिए तूने सहस्र के हाथ॥

कोटि-कोटि जनता के उर के अश्रुपूर्ण अभिवन्दन।
कोटि-कोटि रीते प्राणों के नीरव करुणा-क्रन्दन॥
तुम न रहे पर अमर रहेगी कृति की गरिमा गुंज।
बल देगी स्मृति-किरन तुम्हारी हे प्रकाश के पुंज॥

४१

जवाहरलाल नेहरू

रात ढल गई कब की पौ फट गई सवेरा दूर नहीं।
तम छँट गया देश की किस्मत की प्राची बेनूर नहीं॥
भर जाने को है हर खाई हर परबत ढह जाने को।
कृषक आज मजबूर नहीं है विवश आज मजदूर नहीं॥
संग तुम्हारे हे तरणी के कर्णधार आश्वासन है।
मौजों मे तिरती तरणी का झिलमिल साहिल दूर नही॥

४२

जिस विधि ने रघुपति के वैभव के मस्तक पर वनवास लिखा।
जिसने गौतम की मलय सुवासित साँसों पर सन्यास लिखा॥
जिसने अशोक की दर्प खड्ग पर करुणा का आश्वास लिखा।
जिसने विप्लव के पट विनाश के संग सृजन का हास लिखा॥
सागर में बाड़व लिखा, घोर धरती के उर भूचाल लिखा।
उस विधि ने गौरव सिक्त कलम से जयतु जवाहरलाल लिखा॥

चिर जयतु जवाहरलाल, कोटि जनता के उर के उद्बोधन।
चिर जयतु जवाहरलाल, शुष्क मरु जीवन के शाश्वत जीवन ।।
तम तोम निशा नैराश्य कलुष में आशा की कमनीय किरन।
स्वातंत्र्य मंगलाचरण कि जिसका उस रूपक के भरत वचन ।।
ऐसे जाज्वल्य प्रदीप कि उर-उर के समीप जो है प्रभास।
ऐसे जाज्वल्य प्रदीप कि जिसका देश-विश्व में सम प्रकाश ।।

तुम धरा-गगन के मिलन क्षितिज पूरब पश्चिम के ऐक्य हृदय।
जो पाँच महाद्वीपों की सीमा बन लहरे वह नील निलय ।।
तुम वर्तमान की मृग-मरीचिका में अतीत के महदाशय।
तुमने युग बनकर बांध लिया है सांसों में निस्सीम समय ।।
अमिताभ तथागत की मंगल वाणी ने जहाँ विराम लिखा।
तुम वह अशोक के हृदय-ज्योति ने झुककर जिसे प्रणाम किया ।।

संसृति की संध्या हो जैसे हो विश्व विलय का आयोजन।
तट पर झंझा, आक्षितिज सिंधु में ज्वार उमड़ता जल प्लावन ।।
जिसमें भरमाता है घिरता है तिरता है मानव का मन।
जिसमें अदृश्य हो गया धैर्यध्रुव रुद्ध हो गये प्रगति चरण ।।
तब निखिल विश्व-व्यापी हिंसा प्लावन में जीवन के प्रमाण।
तुम इरा और श्रद्धा के सम स्वामी मनु की प्रतिकृति महान ।।

तुम मर्यादा के पुरुषोत्तम संयम के संजीवन विधान।
लंका में बंदी सीता के तुम मुक्ति दूत निर्बद्ध प्राण ।।
तुम वैषम्यों के द्वन्द्वों संघर्षों के अनुपम समाधान।
युग साम्य बुद्धि गम्भीर गिरा में तुम युग-युग के साम गान।
माँ के सुहाग के अरुण प्रवाल रहो चिर उन्नत भाल रहो।
जब तक रवि शशि में किरण रहे चिर ज्योति जवाहरलाल रहो ।।

परम्परा को बाँधा जिसने सबल प्रगति के स्वर में।
तेज पुंज हिम बनकर ठहरा जो ज्वाला के घर में॥
वर्तमान में विकसित होकर जो भविष्य तक फैला।
रंगा स्वर्ण से जिसने मानव भाग्य क्षितिज मटमैला॥
वह अनन्त है मृत्युंजय है कण-कण में व्यापा है।
उसने अपने लघु पद क्रम से संस्कृति को नापा है॥

जब-जब फूल खिलेंगे सूखे अधरों की शाखों में।
नई जोत चमकेगी जब-जब पथराई आँखों में॥
जब-जब खंड-खंड हो बिखरेगी शोषण की कारा।
मानव के अन्तर की जब-जब मुक्त बहेगी धारा॥
जाने वाले स्मृति के घर से कहाँ भाग पाओगे।
बहुत याद आओगे तब-तब बहुत याद आओगे॥

४४

लालबहादुर शास्त्री

एक घड़ी के लिए राष्ट्र की धड़कन जैसे रुक गई ।
एक घड़ी के लिए काल भी स्वयं सहमकर रह गया ।।
एक घड़ी के लिए अचानक चमक आँख की चुक गई ।
एक घड़ी के लिए दर्द भी जैसे जमकर रह गया ।।

वीतराग सिद्धार्थ चल दिये मंडित यश के पुंज में ।
सब कुछ पा हम किन्तु तुम्हारे बिना हाय सिर धुन रहे ।।
कल गुलाब के फूल खिलेंगे तरुण शान्ति के कुंज में ।
आज शान्तिवन में हम रोकर फूल तुम्हारे चुन रहे ।।

तुम कृशकाय किन्तु हिमगिरि की दृढ़ता अन्तर में लिए ।
ऐसे उठे, तुम्हारे सम्मुख लगी क्षुद्रता काँपने ।।
तुम वामन, पशु शक्ति दम्भ के सिर पर पग धर चल दिये ।
क्षण में नाप अखिल धरती को, नभ की सीमा नापने ।।

काल गर्व मत करे तुम्हारे हाड़ चाम को लूटकर ।
हाड़ चाम तुम नहीं, भावना एक शुद्ध निष्काम थे ।।
मन-मन में हो गये व्याप्त तन के बन्धन से छूटकर ।
प्रेरकता अभिराम आज तुम कल तक श्रम अविराम थे ।।

राष्ट्र बीन के तार-तार यों सधे एक ही स्वर बजे।
राष्ट्र-राष्ट्र की बीन-बीन में संगति हो संगीत की।।
प्रेम शान्ति के अस्त्र-शस्त्र से अजय शक्ति का घर सजे।
एक नई परिभाषा पाये विश्व हार की जीत की।।

तुम्हें भूलकर भूल जायगा जग जीवन के अर्थ को।
तुम्हें याद कर याद रखेगा जीवन की कमनीयता।।
तुम्हें संग ले सदा मिलेगी सक्षमता असमर्थ को।
सदा मिलेगा पथ भूले राही को मंज़िल का पता।।

सीमाओं में बद्ध फैलकर तुमने यह दिखला दिया।
है कितनी असीम मानव की क्षमता की संभावना।।
उससे कहीं अधिक हो देकर, तुमने जिससे जो लिया।
निबटाने चल दिये मौत से अपना देना-पावना।।

तुम गीता के श्लोक धर्म के वचन कर्म के वेश में।
तुम्हीं पार्थ उद्बद्ध शक्तिमय तुम्हीं पार्थ के सारथी।।
विकस रही है नई किरन लो धर्म क्षेत्र के देश में।
बिलख रही है कुरुक्षेत्र के कोने में माँ भारती।।

चीनी आक्रमण के प्रसंग में

१

देश रहे हम रहें न चाहे यह संकल्प सशक्त चाहिए।
अपनी इस अखण्ड मंज़िल की चेतनता अविभक्त चाहिए।।
बनते हुए देश की किस्मत यों ही नहीं बना करती है।
स्वर्ण चाहिए, रौप्य चाहिए, स्वेद चाहिए, रक्त चाहिए।।

२

जाग उठा है देश भावना का नभचुम्बी ज्वार उठा है।
धर्म युद्ध में कर्म स्वयं ही कर में ले तलवार उठा है।।
शान्ति न दे थपकियाँ शौर्य को, पौरुष के परचम के नीचे।
जाग उठा है देश कि अपना सेनानी ललकार उठा है।।

३

बुद्ध और बापू का भारत शान्त मगर है, दीन नहीं है।
वन्दन योग्य भूमि भारत की विक्रय योग्य जमीन नहीं है।।
बर्बर चीन न छीन सकेगा माँ का मुकुट हिमालय हमसे।
भारत माँ की शपथ किया तो हमीं नहीं या चीन नहीं है।।

४

अपने देश विदेशी अज़गर फन फुफकार रहा है।
धीरे-धीरे सरक कुण्डली गहरी पार रहा है।।
जगे राष्ट्र की साँस क्रोध में प्रलयंकर होती है।
सहम हट रहा पीछे जैसे खुद से हार रहा है।।

५

अपने विष पर वृथा गर्व मत करे कि तुमको वश में करके।
शिव शंकर का कालकूट से नीला कंठ तुझे धारेगा।।
या फिर कृष्ण नाथ फण तेरे सिर धर चरण मुग्ध नाचेंगे।
ओ ज़हरीले नाग एक दिन तेरा अहंकार हारेगा।।

४६

पाकिस्तानी आक्रमण के प्रसंग में

१

दुश्मन अपने द्वार खड़ा है हम अपना कर्तव्य न भूलें।
इस मृत्युजय राष्ट्र-यज्ञ में जीवन भी है हव्य, न भूलें।।
शान्ति धर्म शाश्वत है अपना, युद्ध आज की विवश नीति है।
दुश्मन को पद-दलित कर चलें पर अपना गंतव्य न भूलें।।

२

अनचाहा हो, पर अनिवार कभी होता है।
तट से भी प्रियतर मँझधार कभी होता है।।
धैर्य निबलता की न भ्रांति दे, क्योंकि शांति का—
रोष पलट पैनी तलवार कभी होता है।।

३

एक अंश अपना, हमने सोचा था—हमसे टूट न जाये।
टूट गया, तो सोचा–दिल के पास रहे यह, रूठ न जाये।।
यह रूठे हम इसे मनायें, अनुचित-उचित चले यह कब तक।
अनुचित-उचित चला, तो डर है कहीं बुलबुला फूट न जाये।।

४

निपट अहिंसा का पथ चलकर होने दें किस भाँति हम—
पदाक्रान्त छल और कपट से अपने देश महान को ।।
शान्ति, क्षमा कर, विपथ हुए तो फिर पथ पर आ जाएँगे ।
पहले तनिक सीख दे लें उच्छृंखल पाकिस्तान को ।।

५

ताजमहल की हँसी—नियामत सारी दुनिया भर की ।
यह पवित्र दरगाह, मजारें ग़ालिब और ज़फर की ।।
ग़ज़ल जिगर की, अग्नि बीन नज़रुल के अँगारों की ।
ये सारी निधियाँ है तेरी, मेरी, अपने घर की ।।

कुछ भी शप अगर है हममें ताक़त, तुझ में पानी ।
इन पर बरबस कर न सकेगा तू अपनी मनमानी ।।

———

हमारे साहित्यिक प्रकाशन

भक्ति काव्य में माधुर्य भाव का स्वरूप (शोध-ग्रन्थ)

डा० जयनाथ 'नलिन'

प्रस्तुत शोधग्रन्थ पर श्री जयनाथ 'नलिन' को पंजाब विश्वविद्यालय से पी० एच-डी० की उपाधि प्रदान की गई है। पुस्तक में भक्तिकाल के काव्य की गवेषणात्मक ढंग से चर्चा की गई है। प्रथम संस्करण—१९६६, मूल्य–२५.००.

नबन्ध और निबन्ध (निबन्ध-संग्रह)—डा० इन्द्रनाथ मदान

प्रस्तुत पुस्तक में डा० इन्द्रनाथ मदान के व्यक्तिगत एवं आलोचनात्मक निबन्ध संग्रहित है। व्यक्तिगत निबन्धों के अन्तर्गत उनकी बहुत-सी वार्ताएं हैं जिनको आकाशवाणी द्वारा प्रसारित किया गया है। प्रथम संस्करण—१९६६, मूल्य—१५.००.

श्रद्धाराम ग्रन्थावली—सम्पादक डा० सरनदास भनोट

प्रस्तुत पुस्तक में श्रद्धाराम फिल्लोरी के समस्त साहित्य को, जिसमें **सत्यधर्म मुक्तावली** (तीन भाग), **शतोपदेश धर्म सम्मवद**, **भाग्यवती** (उपन्यास) एव **बीज-मन्त्र** संग्रहित है, प्रकाशित किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन से एक महान अभाव की पूर्ति की गई है। प्रथम संस्करण–१९६६, मूल्य–८.००.

रेवा तट (काव्य-संग्रह)—डा० राजेश्वर गुरू

प्रस्तुत काव्य-पुस्तिका में हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठित आलोचक एवं कवि की समय-समय पर लिखी गई कविताओं का संकलन है। प्रथम संस्करण–१९६६ मूल्य—५.००.

कुरुक्षेत्र : एक सांस्कृतिक परिचय—ले० बालकृष्ण मुजतर

प्रस्तुत पुस्तक मे महाभारत के प्रमुख रण-क्षेत्र स्थल कुरुक्षेत्र का सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एव भौगोलिक परिचय दिया गया है। विद्वान लेखक ने बताया है कि आदिकाल से लेकर वर्त्तमान युग तक कुरुक्षेत्र किन-किन अवस्थाओं से गुजरा है और उसकी उस समय धार्मिक एव सांस्कृतिक दृष्टि से क्या स्थिति रही है। प्रथम संस्करण—१९६५, मूल्य—१२.५०.

अन्य प्रकाशन

आलोचना एवं साहित्य

डा० जयनाथ 'नलिन'

विद्यापति : एक तुलनात्मक समीक्षा (पंजाब भाषा विभाग द्वारा पुरस्कृत)	११.००
आलोचक एवं निबन्धकार : शुक्ल	६.५०
शुक्ल एक समीक्षा	३.००

डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

वृन्दावनलाल वर्मा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	५.००
राजा राधिकारमणप्रसादसिंह : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	६.००
हिन्दी गद्य विकास और परम्परा	[illegible]